क्रूसीफाइड प्रश्न और अन्य कविताएँ

पवन चामलिङ किरण

नेपाली से अनुवाद
सुवास दीपक

निर्माण प्रकाशन
नाम्ची दक्षिण सिक्किम,
प्रथम संस्करण : 1996
मूल्य 100/-
आवरण : हेमू राई

समर्पण
माता श्रीमती आशरानी चामलिङ
तथा पिता श्री आशबहादुर चामलिङ
को श्रद्धावत्

दो शब्द

इस संग्रह की कविताएं मेरे तीन प्रकाशित कविता संग्रहों 'प्रारम्भिक कविताहरू' (1970-78), 'अन्तहीन सपना छ मेरो विपना' (1979-85), तथा 'म को हुं?' (1986-92) की अवधि में लिखी कविताओं से चुनी गईं हैं। इस प्रकार तकरीबन बाईस वर्षों की कविता-यात्रा का प्रतिनिधित्व करती हैं ये कविताएं। इसके अतिरिक्त 1992 के बाद लिखी हुईं पर किसी संग्रह में शामिल न की हुईं कुछ कविताए भी ली गईं हैं।

गजानन माधव मुक्तिबोध ने लिखा है कि 'काव्य-रचना मात्र व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिय नहीं है, वह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है और फिर भी एक आत्मिक प्रयास है। जिसमें जो सांस्कृतिक मूल्य परिलक्षित होते हैं वे व्यक्ति की अपनी देन नहीं हैं, समाज अथवा वर्ग की देन हैं।'

मैंने कविता लिखना शुरू की थी जनता के लिए। समाज में व्याप्त असमानता, जहालत और शोषण से मेरा हृदय रो उठता था और इन विसंगतियों से लड़ने के लिए विद्रोह और विरोध की भावना मन में प्रबल हो उठती थी। बाद में राजनीति में आकर अत्याचार, दमन, अन्याय और शोषण का विरोध करने लगा। आज मैं राजनीति भी जनता के लिए करता हूँ, उद्देश्य और लक्ष्य एक ही है। जनता की सेवा ही मेरा अन्तिम लक्ष्य है। आर्थिक सम्पन्नता के साथ-साथ मैं वैचारिक सम्पन्नता का भी पक्षधर हूँ।

मेरे कवि और राजनीतिज्ञ में कोई टकराव नहीं है। टकराव की स्थिति में मैं अपने लक्ष्य नहीं हुआ है। इस मानसिक गुलामी से जब तक देश औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्त नहीं हुआ है। इस मानसिक गुलामी से जब तक देश मुक्त नहीं होता तब तक सच्चे अर्थों में देश को स्वाधीन नहीं कहा जा सकता। इस मानसिकता से लड़ने के लिए लेखक-बुद्धिजीवियों को आगे आना होगा।

ये कविताएं मेरे जीवन की तरह सरल हैं और इस अर्थ में ये जीवन सापेक्ष भी हैं। कोई रचनाकार किसी 'वाद' के घेरे के अन्दर कैद होकर स्वतन्त्र रचना नहीं कर सकता। आदमी की स्वतन्त्रता और सुख का मैं पक्षधर हूँ।

पवन चामलिङ 'किरण'

आमुख

पवन चामलिङ 'किरण' समाज के निम्न वर्ग के लोगों के जीवन से सम्बन्धित यथार्थ के प्रति अति संवेदनशील कवि हैं। वे गरीबों, अशिक्षितों, अवहेलित भूखे-नंगों के जागतिक अस्तित्व, उनके उत्थान और उनकी समग्र मुक्ति, सम्पन्नता और सौंदर्य की वकालत करते हैं।

उनमें विचारों की अस्थिरता, दृढ़ता का अभाव और जीवन दर्शन में अवसरवादी पलायन नहीं है। यही उनकी ठोस और मुख्य विशेषता है। एक धारणा और विश्वास को चुन लेने के बाद वे उसी पर आद्यान्त टिके रहे हैं। उनकी प्रत्येक कविता इसका सबूत है। अपने तमाम समकालीनों की तुलना में उनकी निजी छवि अलग और स्पष्ट है। बिम्बों और प्रतीकों की मृगया के पीछे सुदूर ग्रीक पुराकथाओं से मिथक उधार लेकर दुरूह और दुर्बोध लेखन की ओर जाने वालों की जमात में वे कभी शामिल नहीं हुए। अपनी सरल, सहज, पारदर्शी शैली लिए अपनी मौलिकता से उन कवियों से अलग रहे। इसी तरह चमक दमक से भरपूर लेखन के साथ साथ दलगत, गुटपरक लेखन से भी दूर रह कर अपने लेखन और अपनी सोच को वास्तविकता का जामा पहचाने के कठिन और व्यावहारिक संघर्ष में जुटे रहे। यही कारण हो सकता है वे काव्यालोचक और साहित्येतिहासकारों की दृष्टि से काफी दूर रहे। उनका कवि विज्ञप्ति और प्रचार का विषय नहीं रहा। उन्होंने चर्चित होने के लिए पगडंडी नहीं पकड़ी। मौनतापूर्वक काव्य-साधना में जुटे रहे। उनकी साधना सिर्फ वैचारिक प्रचार और प्रसार और मौखिक विद्रोह नहीं है। वे स्वयं द्वारा भोगी, देखी और जानी हुई प्रत्यक्ष अनुभूति और यथार्थ को शब्दों में उतारने का प्रयास करते हैं। उनके काव्य लेखन में रहती आई एक निरन्तर-स्थिरता या दृढ़ प्रतिज्ञता के मद्देनजर वे अपने विचारों में स्पष्ट और ईमानदार हैं। कवि पवन चामलिङ 'किरण' शारदीय टिस्टा के पानी की तरह निर्मल और स्पष्ट विचारों के हैं।

मानव चिन्तन में बहुत से परिवर्तन और उत्पात हो चुकने के बाद भी मृत्यु शैय्या पर पड़ा ईश्वर मानव समाज, सभ्यता और सांस्कृतिक गतिविधि के विकास में टांग अड़ाने से बाज नहीं आता। वे ईश्वर विरोधी नहीं है पर निजी लिप्साएँ, कुकर्म, लालच आदि छुपाने के लिए ईश्वर का आवरण ओढ़कर चलने वाले पाखंडियों के वे प्रबल विरोधी हैं। इसीलिए उनका चिन्तन वास्तववादी और वैज्ञानिक है। कविताओं में चिन्तन का मूल धरातल आर्थिक विषमता, शोषण, धन दोहन और ईश्वर के नाम पर किए गए तमाम कुकृत्यों और पाखंडों की आलोचना रहा है। आलोचनाकालीन नेपाली कविता के वे एक दृढ़ स्तम्भ बन कर खड़े हैं। चिन्तनगत स्थिरता,

अभिव्यक्तिगत स्पष्टता और शैलीगत सरलता से लिखने वाले बहुत कम होते हैं। वर्तमान युग के काव्य सृजन में इसीलिए उनका योगदान महत्वपूर्ण है।

समग्र मानवता के प्रति साकारात्मक दृष्टिकोण और भावना रखने वाले अति संवेदनशील और राजनीति में आकंठ डूबे होने पर भी कवि पवन चामलिङ को बचाने की आकांक्षा रखने वाले पवन चामलिङ 'किरण' राजनीति और साहित्य की सरहद पर खड़े मानव की शांति के लिए तपस्यारत हैं। समग्र मानवीय उत्थान के लिए कविता उनके लिए एक उपासना है।

ये कविताएं समाज के रूढ़ अनुशासन से बाहर स्वच्छन्द मानव स्वभाव में उसकी मुक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए समाज के लिए अनुकूलता उत्पन्न करने वाले काव्य उद्देश्य में सफल हैं। वे जागरूक और ईमानदार रचनाधर्मी हैं जो सामाजिक संदर्भों से गुजरते हुए अपनी चोखी अनुभूति को वास्तविक और सार्थक अभिव्यक्ति देने में सफल हैं।

सरल और सुबोध भाषा, अभिव्यक्ति में क्लिष्टता का अभाव और अपनी मिट्टी की सुगन्ध बिखरेती उनकी कविताएं - 'गरीब की देह पर माघ पूस का घाम' हैं। ये कविताएं मनुष्य की चेतना को संवारती है और उसके विश्वास और पुरुषार्थ को समर्पित हैं।

सुवास दीपक
अनुवादक

हामरा नया साल

रहम और तरस के मोहताज

सदियों से

बोन्साई की तरह

जिन्दगी बिताने वाले हैं हम।

जुल्मो-सितम सहने वाले वीर हैं हम।

हमारे लिए आया नहीं है अब तक कोई नया साल

क्योंकि हमारे लिए हमेशा आता है

दुःखों और तकलीफों का नया साल।

मुट्ठी भर लोगों की बपौती बन आता है नया साल,

हमारे लिए कहाँ आता है नया साल!

कितने युग बीत चुके

कितनी सदियाँ बीत चुकीं

पर आया नहीं हमारा अपना नया साल!

अपने भाग्य की सुरक्षा

अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए

लाना होगा हमें खुद अपना नया साल

अपनी मुक्ति और अधिकारों का नया साल!

अपनी खुशी और स्वतंत्रता का नया साल

आ रहा है 'हम' बन कर हमारा नया साल!

मनका घर

पृथ्वी के विस्तृत आयतन में नहीं

संसार की भव्यता में भी नहीं

पर अपने ह्रदय के कोमल धरातल पर

चोखी भावना की जमीन पर

मानवता की ईंटों और गारे से

मैंने अपने मन के घर का निर्माण किया है।

मैंने निर्माण किया है

एक घर प्यार का

जहाँ शान्ति का राज है
इस राज के चारों ओर
प्यार-मुहब्बत की बाड़ है।
सत्य और अनुराग की फुलबाड़ी के
बीच अवस्थित
मेरी भावना के इस घरौंदे में
संसार के सभी लोगों को
अटा सकने की क्षमता है।
आकाश से भी विस्तृत इन से निर्मित
मेरे मन के घरौंदे में
संसार के सभी लोगों को
अटा सकने की क्षमता है।
आकाश से भी विस्तृत इन से निर्मित
मेरे मन के घरौंदे में
हमेशा रौनक रहती है
जहाँ खुशियों और आनन्द का बसेरा है
क्योंकि यहाँ -
मर्यादा की मादल बजाती है मानवता
अहिंसा और प्रेम के गीत गाती है सच्चाई
माया, ममता और कोमलता का नृत्य करते हैं लोग
दया-धर्म, एकता और समानता की धुन बजाते हैं लोग
हृदय की डोरी से
लोग खुशी से झूला झूलते हैं
सत्य, अहिंसा और मानवता की बातें करते हैं
माया और कोमलता से आलिंगनबद्ध हो
खुशियाँ मनाते हैं।

मुर्दों की बस्ती में आदमी

युगों से लोग

आराम फरमा रहे हैं

बैठे-ठाले

खड़े

उछलते कूदते

सुन रहे हैं, अंट-छंट हरकतें कर रहे हैं

लोगों की भीड़ चुपचाप जल रही है।

जख्म जल रहे हैं

समस्यायों के बोझ से दबे पड़े हैं

अंधकार उन्हें निगल रहा है

फिर भी ये लोग

खड़े है, देख रहे हैं

समझ रहे हैं बूझ रहे हैं

चुपचाप सह रहे हैं

सिर्फ बरदाश्त कर रहे हैं।

तुम्हारे लिए

रातों का अंधकारमय होना

उजालों के लिए ही तो है

पतझड़युक्त उदास शरद्

वसन्त की हरियाली के लिए ही तो है!

निर्धन, बेजुबाँ -

धनवानों की खातिर - तब्ज्जह के लिए ही तो हैं।

निर्बल मूक जनों के आँसू

सुखी लोगों की प्यास बुझाने के लिए ही तो हैं।

बहा दिए हैं इसीलिए

मैंने अपने सारे आँसू तुम्हारी मुस्कान के लिए

मैं रो रहा हूँ ताकि तुम हँस सको।

मेरा एक कतरा आँसू भी

तुम्हारे जीवन में हँसी-खुशी ला देगा
मेरे मरने पर तुम्हारी उम्र बढ़ेगी
मेरी दरिद्रता तुम्हें धनी बनाएगी
इसीलिए बहा दिया है मैंने
एक एक कतरा लहू भी तुम्हारे लिए।
मैंने दरिद्रता स्वीकार कर ली है
ताकि तुम अमीर बन सको
मैंने काँटों पर पैर रखे हैं
ताकि तुम्हारे पाँवों में फूल सजें
मैंने अंधकार को स्वीकार कर लिया है
ताकि तुम्हारी जिन्दगी में उजाला हो
यही कारण है तुम्हारा संसार हंसता है तो मेरा रोता है।

मेरा देश

हमेशा एक कोलाहल लिए
इन बस्तियों, शहरों और देश के लोग
आन्दोलन, जुलूस, हड़ताल में तब्दील हो
भाषण, नारे और पार्टियों में तब्दील हो
बड़ी बड़ी मांगों और क्रान्तियों के पोस्टर
दीवारों और चट्टानों पर चिपका कर
पेड़ों की टहनियों से लटका कर
उछलते कूदते हैं
नाचते हैं और खुश होते हैं
शून्य में शून्य जोड़ते हुए
हाथ में शून्य ही लगने पर ये लोग
उछलते हैं, कूदते हैं, चिल्लाते हैं
और कोलाहल में यह देश
डूबता जा रहा है.... डूबता जा रहा है।
ऐसे शोर शराबे की व्यवस्था में जीने को
अभ्यस्त ये लोग

अन्याय, अत्याचार के बोझ से
झुकते जा रहे हैं.... झुकते ही जा रहे हैं।

बोध

कभी खत्म न होने वाली
लगातार लम्बी होती
विश्व की धरती पर बिछी सड़क
आजकल खचाखच भरी है
पैर तक टिकाने की जगह मुश्किल से बची है
सड़क के आयतन भर में
आदमी के कदम प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं
जल्दबाजी और धक्का-मुश्ती में
कदम दर कदम
हार-जीत और चुनौतियों को स्वीकार
कर रहे हैं
सड़क सोच रही है
सड़क जाग रही है..।

तेरा मेरा आह्वान

एक बार नहीं
दो बार नहीं
ऐसा जुल्म
हो रहा है बारम्बार
सन्तुष्ट नहीं है ये
लूट कर भी हमारे घर-बार।
हमारे खून पसीने को भी लूट कर
ये लोग जिन्दा रहते हैं।
कौन बचाएगा इस दुनिया में
गरीबों की आबरू?
उखाड़ कर फेंक दो

इस दुनिया से
इन पापियों की हकूमत को।

वाध्यता

एक बार जन्म लेकर
इस महासंसार में आदमी को
जिन्दा रहने की मजबूरी है।
मोमबत्ती की तरह खुद को जलाते
मानवता के लिए कुर्बान होने की मजबूरी है।
कभी कभार आदमी होकर भी
आदमी की ही खातिर
नीलकण्ठ की तरह
चुपचाप जिन्दा रहने की मजबूरी है।
अपनी ही तरह के लोगों से
भयभीत होकर जीने की मजबूरी है।

मैं

जिन्दगी के श्राप से
अनाथ हैं मेरी कथाएँ
एक खोखला संसार सजाकर
मैंने अपने 'मैं' को खो दिया है
मैंने अपनेपन को ही निगल लिया है
मैंने अपने वजूद को बिसरा दिया है आज।
इसलिए -
शराबखाने में इज्जत पीकर
धुत्त पड़े शराबी की तरह
उपेक्षित हैं दुलार न पाई मेरी कथाएँ
निराकार हैं मेरी वास्तविकताएँ।

मेरा भगवान

अपने भगवान की मूर्ति के सामने खड़े हो
मैं देख रहा हूँ बारम्बार।
जीर्ण-शीर्ण, धँसी आँखें, नंगे पाँव, भूखे पेट
अर्द्ध-नग्न शरीर कुण्ठित!
युगों से मेरा भगवान
अवहेलित और शोषित है।
मन्दिर, गोम्पा और चर्च में
सजा कर रखा है
इसे सजावट की वस्तु की तरह।
इन मन्दिरों और गुम्पाओं में
गिर्जाघरों में मेरा भगवान
दरअसल कैद है।
मेरे भगवान के नाम पर लोग
पूजा-अर्चना करने
उसके नाम से प्राप्त किए रुपये-पैसे
और धन-दौलत पर
हक जताने वाले लोग कोई और ही हैं।
उसके नाम पर जिन्दा रहने
उसके सेवक और पुजारी होने का ढोंग करने वाले
उसके नाम के व्यापार में लाभ कमाने वाले
ये तथाकथित सेवक
रात-दिन मोटे जा रहे हैं।
मेरे ईश्वर
इसीलिए तुम सदियों से ठगे गए हो
सब कुछ होकर भी तुम्हारा कुछ भी नहीं है
तुम ईश्वर होने पर भी
स्वतंत्र नहीं हो
कल की तरह आज भी

मेरे ईश्वर तुम वैसे ही हो।
मैं देख रहा हूँ
तुम भी देख रहे हो.... पर?

राष्ट्रीयता का आकाश

मेरी राष्ट्रीयता का आकाश
मुझे नीचे ही नीचे दबाता जा रहा है
मेरी जमीन भी मेरे पैरों तले
दबती ही दबती जा रही है...।
मेरे चहुँओर अंधकार है
फैला है चहुँओर दम घुटता वातावरण
बारूद और खून की रोशनाई से
मेरे देश का मानचित्र खिंचा है
इस मानचित्र में अपनी राष्ट्रीयता ढूंढते ढूंढते
थककर चकनाचूर हो
बड़बड़ाते जा रहे हैं मेरे देश के लोग
अपने ही अन्दर अपनी राष्ट्रीयता को
कैद बना कर।

सच्चे सपने का सच्चा संसार

जब मैं हर सुबह
एक सच्चा सपना संजोकर उठता हूँ
मुझे एक नये संसार की जरूरत पड़ती है
और मानव के देश के मानचित्र को
खोजने की प्रबल इच्छा होती है।
इस ढोंगी संसार में
मैं सांस नहीं ले सकता
जिन्दगियाँ यहाँ बीमार बन चुकी हैं
बल्कि मैं धू-धू कर जल उठूँगा

चाहे पलभर के लिए ही क्यों न हो।
इन अँधेरी गलियों और शहरों में
अन्याय और अत्याचार सहते मैं जिन्दा नहीं रह सकता।
अन्याय और अत्याचार का विरोध किए बिना
खामोश रह कर जिन्दगी बसर नहीं कर सकता।
इसलिए इस पवित्र धरती पर
इन्सानों के पवित्र-निष्कलंक
संसार जो सिर्फ इन्सानों का हो।
जिसमें हँसने, खेलने, नाचने और सांस लेने के लिए
एक साँझा आँगन हो
ऐसे ही देश को मैं आबाद करना चाहता हूँ।

एक अभियान

जिस तरह जमीन के पानी को प्यासा पपीहा नहीं पीता
और आकाश की ओर नजरें टिकाये रहता है
ठीक वैसे ही मैं भी युगों से
आदमी के बर्बर संसार का बहिष्कार कर
एक दूसरे ही
संसार का सपना बुनता प्रतीक्षारत हूँ।
ऐसे संसार की प्रतीक्षा में
जहाँ मेरे लोग
जिन्दा रहने के अधिकारों के लिए
हिरोश्मिा और नागासाकी न बनें
जहाँ मानवता की अदालत में
मानव की हत्या न हो
तलाश है मुझे उस कल की
जहाँ आदमी जिन्दा रहने के अपने
अधिकारों से वंचित न रहे
लोगों के चित्र

युग के आटोग्राफ में चिपकाने की मेरी
आरजू पूरी हो।

मैं आया हूँ

मैं आया हूँ खुदगर्जी से व्यथित दुनिया में
जिन्दगी का नवगीत गाने
मैं आया हूँ भ्रष्ट दुनिया से त्रस्त आदमी को
प्रेम की बोली सिखाने।
मैं आया हूँ दुनिया में
आँसू और खून-पसीने की कीमत खोजने
मैं आया हूँ
जुल्मों-सितम और वर्गभेद का अँधेरा मिटाने।
मैं आया हूँ शोषित-पीड़ित कुण्ठित दुनिया में
उन्मुक्ति की तलाश करने
मैं आया हूँ भूखी फटेहाल जिन्दगियों के
हक की तलाश करने।
मैंने गाए हैं गीत मानवता के लिए
आँसू और खुशियाँ प्रतिदिन बटोर कर
मैं आया हूँ मानवता की ही खातिर
हर पल दिल में मुहब्बत संजोकर।

इन्सानियत ही मेरी जात है

तुम जो भी कहो, जिस जात की बात कहो
पर मेरी जात तो इन्सानियत है
इन्सानः इन्सान के अलावा कुछ नहीं है
यदि और कुछ है तो वह देवता है।
उच्च विचार,
अभिलाषा और विचारों में पारदर्शिता
देवताओं में वास करते हैं
इन्सान के जिन्दा रहने के अधिकारों के पक्ष में ही

ईश्वर का राज होता है
ऐसे विचार रखने वाले लोग
वास्तव में देवता-इन्सान हैं।
देवता का विपरीतार्थक शब्द
इन्सान हो ही नहीं सकता
अर्थपूर्ण जीवन और बराबरी में
जीने वाले लोग
सभी देवता हैं।
इसलिए मेरी जात तो इन्सानियत है।

एक दर्जन मुक्तक

बदकिस्मत जनता

गरीब फटेहाल भूखे बेशुमार है यहाँ
शोषित-पीड़ित भी अनगिन हैं
भोग रहे हैं अन्याय और अत्याचार!
कितने बेशुमार लोग यहाँ!

नामुमकिन

जुल्म के खिलाफ लड़ने वाले इन्कलाबी ही
लगता है जुल्म ढा रहे हैं
मार्गदर्शक ही स्वयं
रास्ते के काँटे बन चुके हैं।

पेट की दौड़

पेट की दौड़ में
नब्बे हार कर
दस के जीतने की बारी है
और दस बदहजमी के शिकार बन
नब्बे का पेट खाली है।

जरूरत

सांस लेने के लिए
रोटी, कपड़े और मकान के लिए
एक साबूत आदमी के लिए
उसे अपने इतिहास और वजूद की जरूरत है।

कितने गए

कितने युग फिसल कर बीत गए
सीनों में दर्द और आँखों में आँसू लिए
कितनी ख्वाहिशें और तमन्नाएँ
सड़ गल गई
अभावों से पिसती बस्तियों से होती हुई।

प्यास

किनारे प्यासे ही हैं
पर नदियां भी प्यासी ही हीं
दिन की क्या बात करूँ
यहाँ तो रातें भी प्यासी हैं।

जिन्दा रहने के लिए

जो मर चुके
उन्हें प्यार करने वाला कौन है
यहाँ तो जिन्दों के लिए कोई नहीं है
आँसू पोंछने वाला कौन है
जब यहाँ आदमी की कोई कीमत ही न हो।

काँटे

काँटे तो काँटे ही होते हैं
फूल भी काँटों को सहारा देकर खिल रहे हैं
आदमी की तो क्या बात करें
देवता भी पाप छुपाए घूम रहे हैं।

मत कहो

मत कहो धर्म की बातें
पाप तो मन्दिर में पैदा होता है
मत कहो ईश्वर की सृष्टि की कथा
वह तो मानव से ही शुरू होती है।

काला दाग

चिराग चाहे जितनी रोशनी दे
उसके तले अंधेरा ही होता है
चंद्रमा चाहे जितनी रोशनी बिखरे
उसके दामन में दाग होता ही है।

नष्ट होते लोग

मालिक की जमीन पर उगाए कद्दू को
हाट बाजार में बेच कर पाए दो पैसों से
खरीदा नमक
सावन की झड़ी में
घुल जाने जाने की तरह
लोग भी घुल कर लोप हो चुके हैं।

तुम रोना मत

तुम मत रोना प्रिये मत रोना
तुम्हारे हिस्से के

सारे आँसू मैं बहा चुका हूँ
तुम जियो प्रिये
खुश रहो हमेशा
तुम्हारी सारी मौतों को मैंने
गले लगा लिया है।

अन्तर की स्थिति

कुछ नहीं है इन निर्धन रातों में
बिसरा कर आशा और भरोसे के सपने
ये भी -
रातों की तरह झूठे और पापी हैं
सपने जनती दरिद्र रातों ने
दरअसल हत्या की है अनगिन सपनों की
इसलिए -
दरिद्र जवानियों का बोझ ढोते दिन
हकीकतों के खण्डहर बन चुके हैं।

पाँच कविताएँ

रोती मानवता

अन्याय और अत्याचार से पीड़ित
जिन्दा ईश्वर रो रहा है
विश्व में निर्दयता से
आदमी की निर्मम हत्या हो रही है
देखो चारों तर्फ
मानवता रो रही है।

क्यू

जिन्दगी का एक एक पल
बीते दिन और

बीत रहे मेरे दिन

सभी सभी को मैं

'क्यू' बन बिता रहा हूँ

आदमी 'क्यू' बन बीत रहा है

युग 'क्यू' में तब्दील होकर बीत रहा है।

उदाहरण

इस देश के अनगिन लोग

तन ढक न सकने के कारण

सर्दी से ठिठुर कर मर जाते हैं

पौष की रात में

लोग उन्हीं लाशों को

कफन में लपेट कर

शमशान घाट पहुँचा देते हैं।

हम यहाँ

जिन्दगी भर

कुलैन और सिन्कोना की देखभाल करते

बूढ़े थामी बाजे को

सर्दी-जुकाम की दवाई खरीद न सकने पर

अकाल मृत्यु कर शिकार होना पड़ता है

मर कर उसे

सिन्कोना और कुलैन के लिए

अपने मृत शरीर को उसी में

आत्मसात करना पड़ता है।

खुद को छूते हुए

दरिद्र रातों की तरह

जीती मेरी जवानी

'क्यू' बन बीत रही है
परजीवी लताओं की तरह
जड़ों के बिना
निःसार : आश्रित
पूरी की पूरी पीढ़ी समाप्त होती जा रही है
आश्रित होती जा रही है
'फासिल' बनती जा रही है
खुद ही समाप्त होती जा रही है।

अशान्त व्यक्ति के साथ अंतहीन बातें

कहाँ होगा वह देश
जहाँ हो शान्ति का हमेशा बास!
आसपास सिर्फ इन्सानों की बस्ती
सुख और शान्ति की रौनक
सचमुच
ऐसे देश की तलाश में
सुख और शान्ति की तलाश करते करते
लोग कितने बेचैन हैं।
शान्ति के लिए
मनुष्य ने अनन्त काल से क्रान्तियाँ की हैं
आज भी कर रहा है, कल भी करता रहेगा।
फिर भी शान्ति है जो
कहीं भी इन्सानों की बस्ती में दिखाई नहीं देती।
मुल्क स्थापित हो रहे हैं
और लोग विस्थापित
आदमी ही आदमी को विस्थापित कर रहा है।
आदमी को
शान्ति की तलाश में पहले खुद को टटोलना होगा
इसकी प्राप्ति के लिए उसे
'स्काईलार्क' बनने की जरूरत नहीं।

शान्ति तुम, क्रान्ति तुम
तुम देश विदेश और संसार भी हो
तुम क्या नहीं हो
आत्मा और परमात्मा भी तुम ही हो!
खुद तलाश करो अपने भीतर
शक्तिशाली मानव तुम हो विचित्र
तुम ही शान्ति हो
तुम ही तो शान्ति हो!

कंचनजंघा

अंधकार में डूबे
मानवगृहों को देखकर भी
हे शैलराज कंचनजंघा
तुम क्यो खामोश हो?
'यहाँ क्या है, क्या नहीं है'
यह जान बूझ कर भी
तुम क्यों खामोश हो?
हे शैलराज कंचनजंघा!
मानवता के चक्षु खोलो
जगाओ जगाओ हे शैलराज, मानव को
तेजस्वी बनाओ सूर्य की तरह।

सपने के गर्भ में

मेरे सिर पर कंचनजंघा का साया है
मेरे पैरों से होकर
टिस्टा और रंगीत नदियाँ बह रही हैं
मैं निश्चल खड़ा
मैनाम और टेण्डोंग पर्वतों के शिखर बन
पहाड़ियों, टीलों और ढलानों में तब्दील होकर
एक सपनें में उलझा हूँ सुनाखरी फूल बन

मैं सपने के गर्भ में छटपटाया हूँ।
कितने युग बीत गए
टिस्टा का पानी मटमैला हुए
कितनी सदियां बीत चुकीं
रंगीत का पानी
खेचीपेरी और मेमोइचु झीलें भी
न जाने कब से तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे हैं
पर तुम सपने के गर्भ से जनमे ही नहीं।
टिस्टा और रंगीत का पानी
तुम्हें नहला कर
पवित्र बनाने के लिए प्रतीक्षारत है
तुम्हें शीतल छाया देने के लिए
देवदार के पेड़ भी युगों से खड़े हैं
तुम्हारे स्वागत में सुनाखरी और गेंदा फूल
हर मौसम में खिलते आ रहे हैं
पर तुम हो कि
अभी तक सपने के गर्भ से निकलते ही नहीं।

युद्ध

युद्ध जारी है
बम विस्फोट हो रहे हैं
युद्ध- विभीषिका में लोगों की चीख पुकारें
ईश्वर पुकारों और प्रार्थनाओं के आर्त्तनाद
बेकसूर लोगों के चकनाचूर सपने
विगत, वर्तमान और आगत
वतन की आबरू, मर्यादा और अस्तित्व के
नाम पर
मानव संहार में लिप्त दानव
हार-जीत की प्रतिस्पर्धा में अन्धे होकर

बमों, गोलों और मिसाईलों के प्रहार करके

मनुष्य के सपनों और हकीकतों को

मनुष्य के सपनों और हकीकतों को

मनुष्य के शाश्वत स्वरूप को

अस्तित्व तक को

ये नष्ट करने पर उतारू हैं।

वतन और वतन के नाम पर

वाद और विवाद के नाम पर

हिटलर, नेपोलियन और मुसोलिनी

के नाम पर

पाण्डवों और कौरवों के नाम पर

राम और रावण के नाम पर

बेकसूर अवाम का चहुँओर खात्मा हो रहा है

बेकसूर ही बली के बकरे बनते जा रहे हैं।

आक्रोश की बंदूक से निकली विप्लव की बातें

अन्याय के जाँत में जड़ित

कुण्ठित, नितान्त अकेली जिन्दगियाँ

विक्षिप्त स्थिति व्याप्त

खण्डहरों में तब्दील हो चुके लोग

आदमी से खींचीं लक्ष्मण-रेखाओं के

आर-पार जीने को अभिशप्त हैं।

नर्क सरीखी जिन्दगियाँ

गतिहीन, चेतनाहीन, सपाट निश्चल जिन्दगियाँ।

आज के निर्माता -

तथाकथित महापुरुष

शक्ति-सम्पन्न प्रभु

सत्ता के घोड़ों पर सवार

प्रतिक्रियावादियों को पैदा करने में व्यस्त हैं।

पहेलियों भर आधुनिक संसार
व्यापक निराकार।
हिरोशिमा और नागासाकी
युगाण्डा और वियतनाम
बांग्लादेश की जर्जरता
मोक्ष! शोक!! रोग!!!
पूंजीपतियों और मालिकों के शोषण
और उत्पीड़न में पिसें, फटेहाल
करोड़ों शोषित और सर्वहारा
मजदूर और किसान
बदकिस्मत लोग जन्म ले रहे हैं आज की व्यवस्था में।
बन्धुओं आओ!
उन्मुक्ति की मशाल हाथों में लिए
अपने खून में विप्लव की गरमाहट लिए
मानव की विशालता के लिए
नव मानव जीवन निर्माण की शपथ ग्रहण करें।
शोषित और सर्वहारा को जन्म देने वाले
समाज के ठेकेदार-पूंजीपति
और प्रतिक्रियावादियों के रास्ते में
बाधा बन नाकाबन्दी करें
नहीं तो कल भी
ये मानव के चोखे संसार में आकर
ईश्वर बन जाएँगे
हमारे खून और पसीने का पंचामृत पीकर
हमारी करोड़ों सन्तानों से ये
अपने लिए चौकीदार, पहरेदार
किसान और मजदूर फिर पैदा करेंगे,
मानव से लाखों अमानव बनाएँगे
मानव के चोखे अस्तित्व को

चीथड़ों में तब्दील कर देंगे।
इसलिए कहता हूँ आओ
एक बड़ी मशाल उठाकर
ईश्वर की इन जर्जर बस्तियों में
आग लगा दें....।

सत्ता

मुझमें आदमी की आवाज और आर्त्तनाद
सुनने के कान नहीं हैं
आदमी को पहचानने वाली आँखें नहीं हैं
आदमी की बोली बोलने वाली आवाज भी नहीं है
ख्वाहिश नहीं है मुझमें
इन्सान की हस्ती को समझने की
क्योंकि
मेरे सीने में दिल नहीं पत्थर है
मेरे जिस्म में खून नहीं बल्कि जहर है
मुझमें रहम और तरस नाम की कोई चीज नहीं है
इन्सानियत नाम की कोई चीज मुझमें नहीं है
मेरा मुँह सुरसा की तरह है
कभी न अघाने वाला पेट है
मैं सर्व शक्तिसम्पन्न सत्ता हूँ
नहीं है सरोकार मुझे पाप और धर्म से
फर्क नहीं कर सकती मैं राम और रावण में
इन्साफ और बेइन्साफ में
क्योंकि मैं सर्व शक्तिमान सत्ता हूँ।
मैं आँख, कान, नाक, दिल, मोह-ममता रहित
अंग-प्रत्यंगहीन
अंधी, गूंगी और बहरी
प्रचण्ड -
आकार-प्रकारविहीन सिर्फ एक सत्ता हूँ।

एक सच्चाई का दन्त्य-कथा बन जाना

पर्वत की तलहटी में एक पोखर
अचानक किनारे टूट जाने पर
सारी जलराशि एक एक बूंद
सागर में विलीन हो गई।
सचमुच सुन्दर था वह पोखर
सचमुच पवित्र था वह
जिसमें अनगिन प्राणी
अमन-चैन के साथ-साथ रह रहे थे।
वक्त बीतता गया
एक दिन दो बड़ी बड़ी मछलियाँ
छोटी छोटी हजारों मछलियों को बेरहमी से निगलने लगीं
खाने लगीं और रौंदने लगीं।
छोटी और बड़ी मछलियों के संघर्ष में
एक दिन अचानक
टूट गए पोखर के सारे किनारे
और सभा छोटी-छोटी मछलियों के
घर समेत प्रबल प्रवाह में बन गए।
अब तो बिलीन हो चुकी है पोखर की कथा भी
महासागर की जलराशि में
अब तो यहाँ की
आँखों की पुतलियों में
एक दूसरा सूरज उग चुका है।

मानवता का विस्फोट

युगों से बिछी हुई सड़क की तरह
नंगी वास्तविकता से जूझती मानवता
घोड़े बेच कर सोयी है क्या?
समस्याओं के बड़े-बड़े चक्के

सरहदों की बनिस्पत
इन बस्तियों की झोपड़ियों में
भयानक युद्ध छेड़े हुए हैं।
एटम और हाइड्रोजन बमों से भी
बड़ी समस्याओं के बम गिरे हैं
मानवता की छाती पर
मानव की बस्ती में।
अस्त-व्यस्त, बिखरे घर
बेबस असहाय जिन्दगियाँ
धू-धू जल रही हैं लाखों झोंपड़ियाँ
लूटे हैं मानव अधिकार
टूट गए हैं आदमी आदमी के बीच के रिश्ते।
इसलिए बन्धु!
यहाँ चक्के नहीं खुद सड़क को ही दौड़ना पड़ेगा
एटम बम नहीं बन्धु!
मानव को खुद फटना होगा।

नव वर्ष

जीत बन आया है यह नव वर्ष
प्रीत लिए आया है यह नव वर्ष
समानता, सद्भावना, शुभेच्छा लेकर आया है
यह नव-वर्ष!
तीन सौ पैंसठ दिनों में
नव-व्यवस्था
नव-उपलब्धि
नई-उमंग
नई-संगत
नव-क्रांति का सन्देश लेकर आया है यह नव-वर्ष!
नयी भावना
नयी कल्पना

नयी सृजना की अपेक्षा करता है मानव!
हे नई नवेली दुल्हन नव-वर्ष!
देकर जाओ मानवता को नया जोश, नयी होश।

सत्य-बोध

इस रंग भूमि में
तुम और मैं एक साथ मिल
एक हाथ बन
तन मन धन से
आगे बढ़ सकते तो
निस्चय ही इस धरती पर
इस संसार में
हम 'हम' बन कर जी सकते थे।
इज्जत के साथ
खुशी खुशी से जिन्दा रह सकते थे।
हम अकेले ही पहाड़ों को फोड़ते हैं
मैं 'मैं' में तक्सीम होकर
आज न तो हम 'हम' बन सके हैं
न तो कुछ और बन सके हैं
कुछ न होना ही हमारी जात बन चुकी है
अभाव और असुरक्षा ही हमारा मुल्क बन चुका है
तिरस्कार और बहिष्कार ही हमारी उपलब्धि
शोषण, उत्पीड़न और दमन से पिसते
हम चुपचाप जिन्दा रहते हैं।
हमारा घर कहाँ है?
इसलिए पढ़ सको तो
एक बार अपने बेघर, बेदरोदीवार
और बेजात होने का इतिहास पढ़ कर देखो।
अपनी धड़कन में एक बार

केवल एक बार खोज सको तो
खुद को खोजो
अपनी अचेतना की दुनिया में
यदि तुम कहीं उलझे हो तो
तुम सचमुच जिन्दा हो तो
तुम और मैं एक होकर
या हम बन कर, होकर
मैनाम और टेण्डोंग के शिखरों पर
अपने इतिहास और अस्तित्व के
कलश का निर्माण करें
मैनाम और टेण्डोंग की तरह
चिरकाल तक अपने अस्तित्व की मुनादी पीटते
टिस्टा और रंगीत की तरह
अनन्तकाल तक बहते
जिन्दा रहें मानव के देश में
मानव की तरह।

नपुंसक युग

नपुंसक युग
शिथिल लिंग की तरह
मुरझाया हुआ है
और समस्याओं से भन्नाया हुआ है
युग के बिस्तर पर अनावृत
कामुक औरत की अतृप्त वासना की तरह।

मेरे अंदर का मैं

जो गुजर गए
उनकी स्मृति में श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ मैं
जो जिन्दा हैं
उनके साथ कन्धे से कन्धा मिला कर

आगे बढ़ना चाहता हूँ
आने वालों के लिए
मानव अधिकार सुनिश्चित करना चाहता हूँ मैं
अपने ह्रदय को संसार से भी
विशाल बनाना चाहता हूँ
पवन की तरह गति
और सूर्य की तरह आग बनना चाहता हूँ
सागर की गहराई और
बादल की तरह कोमल बनना चाहता हूँ मैं।

परजीवी बेल और हम

एक पेड़ से लिपटकर
हरी-भरी बन
टहनी-टहनी पर चढ़ती
समूचे पेड़ पर आश्रित एक बेल
- जिसकी न कोई जड़ें हैं
- न फल और फूल
सिर्फ बेलें हैं जड़ों के बगैर
फिर भी वह हरी-भरी है
पेड़ से लिपट कर बढ़ती है
चढ़ कर पेड़ के संग जीती है।
पर हम उस बेल से भी
बदतर हो चुके हैं
न हो हमारा कोई नाम है
न तो हमारा कोई काम है
न तो उस बेल की तरह
किसी पेड़ के सहारे पेड़ बन जी सकते हैं।
इसलिए हम एक अनाम बेल हैं
शीर्षहीन
सूखी और सड़ी गली।

निपट अकेला आदमी

एक आकार,
एक पेट बन जिन्दा रहने वाला आदमी।
शहर से बस्ती तक
बस्ती से फुटपाथ तक
युगों से
बिखरा
फैला
एक मजदूर हम्माल आदमी।
एक सिपाही
एक दरबान
एक चपरासी
एक मजबूरी
एक दिहाड़ी
एक तनख्वाह बन जिन्दा रहने वाले लोग।
एक शाबासी में
विश्वासपात्र अर्द्ध-चेतनावस्था में जीते लोग।
यही वजह है
आँखें होते हुए भी अन्धे हैं लोग
टाँगें होते हुए भी लंगड़े हैं
कान होते हुए भी बहरे हैं
देश-निर्माण में इनके बलिदान का इतिहास
लिखना मुश्किल है
इन्हीं लोगों के इस मुल्क में
ये इतिहास के पन्नों से क्यों गायब हैं?
सरहदों पर इन्हीं लोगों के सीने
दीवारें बन खड़े हैं
लेकिन इन्हीं लोगों के खून से लिखे इतिहास में
इनका उल्लेख क्यों नहीं?

मौन है परन्तु ये लोग
कुछ बोलते नहीं, शिकवा-शिकायत नहीं करते।
क्योंकि ये लोग
न तो फिरका परस्त हैं
न तो अस्तित्ववादी हैं
न तो समाजवादी हैं
न ही साम्यवादी हैं
ये लोग तो सिर्फ पेटवादी हैं।
इन लोगों को ति सिर्फ
एक ग्रास भात मिल जाए तो काफी है
एक रात सोने के लिए खाट मिल जाए तो काफी है
अपने खून-पसीने से निर्मित घर में
गले में डोरी बँधवा कर
फेंकी हुई हड्डियाँ चबाते
एक बूढ़े कुत्ते की तरह
यथार्थ की हड्डी चबाते हुए
नाच रहे हैं अकेलेपन की मार खाए लोग।
पता नहीं कब मिलेगी निजात
इन्हें इस नियति से
इन अकेलेपन से अभिशप्त लोगों को।

युद्ध-दर-युद्ध

(क)
सरहदें जंगे-मैदान होती हैं
पूर्व और पश्चिम की
उत्तर और पश्चिम की
देश विदेश की, वाद-वाद की
मुल्क-मुल्क के बीच की
लड़ाईयाँ लड़ी जाती हैं इन सरहदों पर।
(ख)

ऐसी लड़ाईयों में
एक की जीत और दूसरे की हार होती है।
(ग)
ऐसी लड़ाईयों से
सृजना होती है और ज्यादा जंगे-मैदानों की
ये पूर्व और पश्चिम की सरहदें नहीं
मुल्क-मुल्क के बीच नहीं
ये तो घर घर के बीच
आदमी आदमी के बीच भयावह रूप से छिड़ी हुई हैं।
प्रत्येक घर, प्रत्येक व्यक्ति ही
दरअसल जंगे-मैदान में तब्दील हो चुका है।
धर्म के नाम पर व्यापार करने वाले
ठग पण्डे अभिनय करते हैं देश-भक्ति का।
भूखे पेट को गिरबी रख कर
खोखले गर्व और मुल्क के नाम पर
उन्हें बन्दूक उठानी पड़ती है।
(घ)
- अमुक ने अमुक पर बम गिराया
- पश्चिम में इतने मरे
- सरहद पर उतने मरे
- मरे कौन? आदमी।
आदमी ने आदमी को मारा। क्यों?
इस अपराध का करना होगा हमें प्रायश्चित अब
नहीं तो हम बरबाद हो जाएँगे
आदमी के नाम पर सिर्फ एक आकार रह जाएँगे।
क्योंकि आदमी के सीने पर
इस युद्ध भूमि की स्थापना तुम्हीं ने ही की है
ये सरहदें तुम्हीं ने खींचीं हैं
ये खून की सीमा रेखा तुम्हीं ने ही उकेरी है

क्योंकि एटम, न्यूट्रान का निर्माण करने वाले
तुम युद्ध-लोलुप हो!
युद्ध की विभीषिका हो, तुम बर्बर युग के जर्जर मानव हो!!

(ङ)

वीरगति प्राप्त करने वाले शहीद पुत्रों के
वृद्ध माँ-बाप, पत्नियों और
दूध पीते बच्चों का एक रक्षक
जब हो जाता है समाप्त युद्ध भूमि में
तो उस परिवार की हिफाजत के लिए लड़ने वाला कौन है?
युद्ध-भूमि को छाती से चिपकाए
ऐसे अनगिन बदनसीव लोगों के लिए
कोई बन्दूक उठाने वाला क्यों नहीं?
करना होगा समूची इन्सानियत के लिए
अब एक अलग लड़ाई का ऐलान
समग्र मानवता के लिए
मानव के पारदर्शी जीवन के लिए
यह जो युद्ध हम लड़ेंगे
उसकी युद्ध-भूमि कोई और ही होगी।

तुम्हारा और मेरा देश

जवानी की दहलीज पर पहुँचने से पहले ही
माँ बन चुकी यौवन लुटा चुकी औरतों की तरह
या पुरुषार्थ का अर्थ और कर्तव्य समझने से पहले ही
बहुत सी जिम्मेदारियों और समस्याओं के बोझ से दबे
वक्त से पहले ही बूढ़े हो चुके पुरुष की तरह है
तुम्हारा और मेरा देश।
खेलने और खाने की उम्र में
शिथिल होकर भन्नाया सा
अपूर्णता और बदहाली का अवेशष

तुम्हारा और मेरा देश।

वास्तव में

जब तब मुझे
धरती पर
चारित्रिक स्खलन का आभास होता है
महासमस्या का अन्न
नियति की धूप में
सूखता लगता है
तब मुझे धरती को उठा कर
आकाश में फेंक देने की इच्छा होती है
क्योंकि कहते हैं कि आकाश सुन्दर है
स्वच्छ है
आकाश की नीली चादर में
करोड़ों चन्द्र-तारे जड़ित हैं
धरती को भी इसी आकाश की तरह
बनाने की इच्छा होती है।
पर अफसोस!
उस सुन्दर आकाश की कथा
इस धरती की व्यथा
उसके अस्तित्व का सृजन धरती से
उठा है आकाश धरती के गर्भ से।
आकाश का अस्तित्व?
धरती की सम्पूर्णता है
लगता है आकाश को नीचे गिरा दूँ
क्योंकि आकाश सिर्फ खोखला है
खोखलेपन के सिवाय कुछ नहीं है।

अपना कैदखाना

स्वतन्त्रता की तलाश में मानव इतिहास
कभी आदमी के खून से
तो कभी अन्चीहे लोगों के आँसूओं से
लिखा जाता रहा
रेखांकित होता रहा
आदमी के समूचे वजूद को
आदमी तकसीम करता गया
लाखों करोड़ों हिस्सों में बाँटता चला गया।
खून की सरहदों
और आँसूओं के बांधों में तब्दील करता गया।
मानव सिकुड़ कर महज घर बनते गए।
लोग अपने-अपने घर और
मुख्तलिफ सरहदों पर
अपने-अपने झण्डे गाड़ने में लग गए।
अपने अपने आंगन
और अपने अपने घरों के निर्माण में लग गए
अपनी-अपनी पार्टी
अपनी अपनी जातियाँ बनाने में जुट गए।
अपने अपने देवताओं को जन्म देने
अपने अपने धर्मों की रचना में लग गए।
इसलिए
इस संसार में
आदमी कभी हिटलर, कभी मुसोलिनी, चर्चिल
और कभी चंगेज खाँ बन कर जिन्दा रहा
कभी ईसा-मसीह, गाँधी और बुद्ध बन
ज्ञान का प्रकाश देता रहा
कभी मार्क्स, लेनिन और माओ बन नाचता रहा।
इस संसार में आदमी

रकम-रकम अभिनय करता आया है
इस रंग-बिरंगी दुनिया के रंग-मंच में
अपना अपना नाटक खेल चुका है
पृथ्वीलोक से चन्द्रलोक तर पहुँच चुका है मानव
एटम और न्यूट्रान बन चुका है मानव
हिरोशिमा और नागासाकी बन
विस्फोट हो चुका है मानव
बम, बारूद और गोला बन
फट चुका है मानव
खून की नदियों में लाशें बन चुका है मानव
सरहदों पर दीवार बन खड़ा हो चुका है मानव
छाती पर अनगिन गोलियाँ खा लड़ चुका है मानव
हजारों बार पश्चाताप के आँसू बह चुका है मानव
लुटे सुहागों और टूटी चूड़ियों का
भाग्य बन चुका है मानव
भूख से मरे और शोक से विह्वल
शहीदों के बीमार बच्चे बन चुका है मानव
अकाल मृत्यु अनगिन बार मर चुका है मानव
मानव-मानव के बीच दुश्मनी का
रिश्ता बन चुका है मानव
विश्व को टुकड़ों में बाँट कर
आदमी को जातियों में विभक्त कर
इतनी बड़ी दुनिया को आंगन आंगन में बाँट कर
मानव के पवित्र सम्बन्ध को
भिन्न भिन्न मायनों में परिणत कर चुका है मानव
मानव के महा-अस्तित्व को
टुकड़ों में विभक्त कर
स्वतन्त्र और सम्पन्न नहीं बन सकता है मानव।
मानव विश्व

और विश्व मानव नहीं बन सका है।
इतना कर चुकने पर भी
मानव सन्तुष्ट नहीं हो सका है।
इस विश्व में
मानवनिर्मित कुव्यवस्था और कुसंस्कार में
या कहें
अपनी लिप्सा और भोग की चाहत में
मानव
बंदी है
अपने ही भीतर
दरअसल आदमी कैद है
अपनी सम्पूर्णता के इर्द-गिर्द उलझ कर
अपनी ही स्वार्थ की बलिबेदी पर चढ़कर
अपनी ही खोज में उलझ कर मानव बंदी है।
प्रत्येक आदमी एक कारागार बन चुका है
अपने अपने विचारों, स्वार्थों
और भोग का
अपनी अपनी सुरक्षा का बंदी।
इसलिए आओ-
खुद से खुद की उन्मुक्ति खोज कर
अपने अन्दर की कारागार को तोड़ कर
बाहर आओ
इस चोखी दुनिया में
मानव के चोखे रिश्ते में
जल, थल और आकाश की तरह।

ईश्वर के संसार में

धर्म की गुफा से हर सुबह
सूरज उगता है
और हर सांझ मन्दिर की मूर्ति में अस्त हो जाता है

है इसलिए दिन भी अंधेरा
रातें भी सर्द और ठण्डी
ईश्वर के संसार में
बदहाली, टूटी उम्मीदें
लुटे अधिकार लिए
शून्य आकाश लिए
पौष की कड़कती सर्दी में
ठिठुरी हुई रात
मेहनत से छाले पड़ चुके हाथ बन जिन्दगी
तार तार हो चुकी है
ईश्वर के संसार में।

जलना है सूर्य की तरह

हम खुद जल रहे हैं
अकेलेपन के अभिशाप से सुलग रहे हैं
कागज के टुकड़ों की तरह
राख होते जा रहे हैं।
अहो! इस में भी तो
कोई उद्देश्य, कोई सार्थकता होनी चाहिए।
जल कर राख तो मुर्दा हुआ करते हैं
हो सकता है इसी वजह से
अकेले जलने की हमारी नियति
मुर्दों के जलने की तरह हो -
क्योंकि मुर्दे जल जाते हैं
मगर जलती नहीं है बदनीयतें
और जलते नहीं हैं कुव्यवस्था,
जुल्म और नाइन्साफी के जंगल।
इसीलिए -
अब जलना है हम सभी को एक साथ मिल कर

सूर्य की प्रचण्ड ज्वाला लिए
सभी को जिन्दा ही जलना है।

एक कथा समाप्ति के बाद की एक और कथा

कहाँ है इन निर्देशों
इन योजनाओं में
आदमी के जिंदा रहने के स्वाभिमान की सुरक्षा?
कहाँ है इन नारों और जुलूसों में
क्रान्ति की उद्घोषणाओं में
सम्पूर्ण जीवन के निर्माण की बातें?
कहाँ है इन गलियों और कूचों में
बस्तियों के घरौंदों में
समान व्यवस्था की सच्ची उपलब्धियाँ?
इसलिए
मुझे लगता है इन योजनाओं की बातें
दर्शकों की आँखों में धूल झोंकने वाले
चलचित्र के रंगीन पर्दे हैं
ये शहरों की गलियों
सड़कों और कचरा पेटियों में
आसमान से बातें करती इन इमारतों
और दिन में ही चन्द्र-तारों का
दर्शन करती झोंपड़ियों में
दग्ध हृदय लिए इन आहत लोगों को जमातों में
मेरी रातों की तरह ये नीरस दिन
मेरे हिस्से के इस बदबूदार माहौल में
मैं देख रहा हूँ इन बेबस मानव जिन्दगियों को।
मैं देख रहा हूँ मानव की भ्रष्ट-दर-भ्रष्ट कहानियों को।
उफ! कितनी बेहाल हैं लाखों जिन्दगियाँ!
उफ! कितनी यातनामय हैं लाखों-लाखों कहानियाँ!!

सिर्फ ठण्डी आहें भरती स्थिति को ढोते
समस्याग्रस्त परिवेश में जकड़े
छटपटाहट और उमस में
प्राप्ति की तलाश करते
कुण्ठित हाट बाजार के पथ की तरह
जिन्दा रहना पड़ रहा है चुपचाप चुपचाप
सपेरों के इशारों पर नाचते साँपों की तरह
आदमी एक जीत
आदमी एक हार
एक कोने पर खड़ी सम्पूर्ण मानवता का
उपहास कर रही है चंद खुशियों की प्राप्ति के लिए।
इस प्राप्ति की दूसरी तर्फ आँसूओं से डबडबाई आँखें
बहिष्कार कर रही हैं मानव की समूची व्यवस्था का।
कितनी हैरानी की दास्ताँ है यह
कितने ताज्जुब का अफसाना है यह
आदमी खुद समाप्ति की चिता उठाए है और
अपनी ही मौत में 'रेकविम्मास' गाने वाले
गवैये बसते हैं यहाँ
अपनी ही समाप्ति और पतन के लिए
विद्रोह और क्रान्ति करने वाले
संग्रामी लोग बसते हैं यहाँ।
(2)
कल उठे तूफान उड़ा नहीं पाए
गाँवों और बस्तियों से सड़े मांस और कीटाणुओं को
कल आए छोटे भूचाल भी गिरा नहीं पाए
उजाला निगलने वाले बूढ़े टीलों को।
कल की आगजनी भी फूंक नहीं पाई
इन बस्तियों के अंधेरों को।
बल्कि फैलते ही चले गए तपेदिक की जीवाणु

फूलों के हरे पौधों में
और प्रचण्ड आग लगा गए
लोगों की अस्त-व्यस्त जिन्दगियों की बस्तियों में।
इसलिए घुटता है सम्पूर्ण वातावरण
शिकंजे में जकड़ा माहौल भीषणता से निगल जाता है
आदमी की सम्पूर्णता को।
तभी तो विषमता विस्फोट करती है
मानवता की धरती में
तभी तो युयुत्सा से आदमी की जिन्दगी छटपटाती है।
न जाने क्यों
खामोश हैं यह देवराली और मैनाम शिखर।
(3)
यहाँ की स्वच्छ हिमाली वादियों में
यहाँ की इन सरल बस्तियों में
टिस्टा और रंगीत के किनारों पर
टेण्डोंग और मैनाम शिखरों की गोद में
मानव की सम्पूर्णता की बिक्री होती मैंने देखी है।
मानव के खून और पसीने की हत्या होती मैंने देखी है।
मेहनतकश लोगों की हथेलियों से
गुम होती जा रहीं हैं सुनहली सुबहें
मुरझाते जा रहे है दिलों के फूल
बढ़ती जा रही है विकृतियाँ
अंकुरित होते जा रहे हैं पतन के बीज
इसलिए इन हाथों को अब तो
सिर्फ निर्माण करने वाले हाथ बनाना पड़ेगा।
इन रातों की तरह अंधेरे दिनों में
पैदा करना होगा अब स्वस्थ सूर्य-बालक एक
और बूढ़े सूरजों के भरोसे सोए कुंभकरणों को
झझकोरना होगा अब तो

इन्सानों की बस्तियों में मुक्ति संग्राम की मशालें जला कर
लोगों के बीच अधिकारों की नही बस्तियाँ बसा कर
अब तो जीना होगा
जीती आँखों के सपनों के स्वस्थ देश का निर्माण करके।

तब शायद एक कथा की समाप्ति के बाद की
एक और सुन्दर कथा का हम
निर्माण कर सकें
पूरी शिद्दत के साथ फिर आदमी की तरह जी सकें।

उस ईश्वर से जिसे मैं पूजता हूँ

तुम युग निर्माता
तुम इतिहास निर्माता
तुम जग-द्रष्टा
हे महाशक्ति
हे मानव रूपी ईश्वर
तुम्हारे खून और पसीने के कतारों से
तुम्हारी बलिवेदी पर
प्रत्येक मुल्क और सरहदों के इतिहास का निर्माण हुआ है।
तुम्हारे खून-पसीने और हाड़-मांस से
इस धरती के कण-कण का जीवन
कण-कण की खुशी
और स्वाभिमान जिन्दा हैं
मुल्क की नींव निर्माण में
पहले तुम्हारी छाती ही खोदी गई है
सरहदें तुम्हारे खून से उकेरी गई हैं
देश के बाँध तुम्हारे ही पसीने से बाँधे गए हैं
तुम्हारे बलिदान से निर्मित हैं इन्सानों के मुल्क
तुम्हारे राख हो चुके घर की नींव पर
निर्माण हुआ है मुल्कों का

तुम्हारे भूखे पेट के आयतन में खड़ा है देश
जहाँ तुम्हारी जीती आँखों के सपने
लटकाए गए है जहाँ तुम्हारे अधिकार
और व्यवस्था के पन्ने-दर-पन्ने
बेसुध हैं तुम्हारे बारे में।
मेरे ईश्वर
हे अवहेलित देवता! मेरे जिन्दा भगवान!!
तुमने इस देश के अणु-अणु में
अपना सम्पूर्ण लुटाया, सम्पूर्ण खोया
पर तुमने जीने का अधिकार तक नहीं पाया।
तुम्हें तो प्रत्येक आहट ने धोखा दिया है
तुम्हें तो प्रत्येक कदम पर लूटा गया है
इसलिए हे मेरे ईश्वर
अपनी उन्मुक्ति के लिए तुम्हें खुद उठना होगा।

तुम

तुम्हारे दुःख में
मेरा अपना हृदय दुःखता है
तुम्हारे आँसू
लगता है मेरी आँखों से बहते हैं
ऐसा काफी कुछ लगता है
गजब है तुम्हारा प्यार
तुम्हें मैंने भोगा है
अपने ही जीवन की तरह।

मैं योद्धा युद्ध का

मैं प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में
दृश्य और अदृश्य रूप में
मूर्त्त और अमूर्त्त रूप में युद्धरत हूँ।

जन्मग्रहण है शंखनाद मेरे युद्ध का
अदृश्य युद्ध-भूमि
निराकार युद्ध-भूमि
मैं योद्धा हूँ युद्ध-भूमि का।
अंधकार के विरोध में एक मुठ्ठी उजास
भाईचारे की उंगली पकड़े
नाइन्साफी और झूठ के अरण्य में
इन्सानियत के हथियार से
हैवानियत के बूढ़े दरख्त को काट रहा हूँ।
इन्सानियत के विरोधी अदृश्य दुश्मन
विचारों की सड़कों से होते आ रहे हैं
सूर्य को ओझल करने
और सम्पूर्ण अंधकार का साम्राज्य स्थापित करने के लिए।
मैदाने जंग का योद्धा मैं
युद्ध की सरजमीन पर
उजाले की एक पल्टन
मेरे साथ-साथ कबाईद कर रही है
अंधकार के विरोध में
आखीरी जंग लड़ने के लिए।

वास्तव में

मैंने अपनी छाती पर
बड़ी बड़ी वीरता के तगमों की जो कतार सजाई है
वह वास्तव में
दासत्व के प्रमाण के अलावा और कुछ नहीं है।
ये छाती पर एक बोझ हैं
ये वीरता की पराजय हैं
मेरी छाती पर सजे ये तगमे।
क्योंकि

मैंने खुद को हजारों बार बलिदान किया है
दासत्व की जंजीरों में कैदी बन
अपना कतरा-कतरा लहू मरुभूमि में गिराया है
उसी का वीर इतिहास बन कर
पर, मैं अपने लिए
वीरत्व दिखा नहीं सका हूँ।
अपने वजूद को समेट कर
जी सकने की भावना का प्रदर्शन नहीं कर सका हूँ।
इसलिए मुझे लगता है
मैं अपना ही लहू पीकर नशे में चूर हूँ।
अपने जिगर को चबा कर खोखला बन जिन्दा हूँ।
बल्कि, ऐसा कह सकता हूँ
कि अपनी वास्तविकता के पेट में भाला घोंप कर
मैं हँस रहा हूँ
क्योंकि
स्व-भाषा, स्व-अस्तित्व के लिए कुछ कर न सकने
और अपने लिए लड़ न सकने का महाशाप लिए
मैं जिन्दा हूँ
अपने ही संसार को फूंक कर....।

विश्वास

महाशून्य की परिधि में कहीं अवस्थित
एक सुन्दर पत्थर की मूर्ति को
युगों से मैं
मन-मन्दिर में देवी-स्थापना करके
आत्मा और परमात्मा की तलाश कर रहा हूँ।
उस सुन्दर मूर्ति को देखते-देखते
उसमें प्यार और मुस्कराहट की तलाश कर रहा हूँ।
इस तरह कितने युग बीत गए
मुझे बैठे प्रतीक्षा करते हुए

कितने जन्म बीत गए
उस सुन्दर आकृति को ह्रदय से संजोए
आज भी मैं
इस सुन्दर मूर्ति की
सुन्दर आवाज और मुस्कराहट का प्यासा
मौन प्रतीक्षारत हूँ.....

क्रान्ति की बातें

क्रान्ति की बातें भी
बड़े-बड़ों की टी-पार्टियों में
और होटलों में 'रक्सी' और 'रम' के नशे में
की गई गप्पों के अलावा कुछ नहीं।
क्रान्ति तो लेखनी और भाषणों में ही
सिमट कर रह गई है
क्रान्ति के नाम पर
गरीब का खून और पसीना
पानी की तरह बहता आया है!
कहाँ है इसके आगे क्रान्ति का वजूद?
क्या यही है क्रान्ति?
आम आदमी के मन में
भ्रम पैदा करने वाले शब्द से ऊपर उठ नहीं पायी है क्रान्ति!
इसी क्रान्ति की बातों ने ही
भूखे-नंगों को और नंगा किया है, धोखा दिया है
पर आ नहीं पाई है
भूखे पेटों और नंगे जिस्मों में कोई क्रान्ति।
कहाँ है, कहाँ है क्रान्ति?
क्रान्ति तो सिद्धान्तों की बड़ी बड़ी पुस्तकों में
युगों से अण्डे सेती आ रही है
क्रान्ति आसन और भाषण में

घास फूस खा कर युगों से रोती आई है
क्रान्ति तो अमीर ठगों द्वारा
गरीबों को धोखा देने और फुसलाने का
सिर्फ एक नारा है
यह अघाए लोगों का सिर्फ एक मन लुहावना गीत है।
अभाव और असुरक्षा में जिन्दा रहने वालों का
सिर्फ एक सपना है
लाल झण्डे का जुलूस क्रान्ति कैसे हो सकता है?
विप्लवी नारे और अभिनन्दन
क्रान्ति कैसे हो सकते हैं?
यह भी एक दल, एक जमात, एक समूह
लोगों के लिए ही है
यह भी सत्ता और भत्ता से आगे कुछ नहीं है।
इसीलिए -
आज तक कहाँ हुई है क्रान्ति?
कहाँ है क्रान्ति का असली वजूद?
लेनिन, मार्क्स, टीटो, माओ, गाँधी का नाम
बेचकर होती हैं क्रान्ति की बातें यहाँ
भूखे, नंगों और अभागों के नाम बेच कर
होती हैं क्रान्ति की बातें
क्योंकि यह तो
समाज के ठेकेदारों का ठेका बन चुकी है
क्रान्ति की तो सम्पन्न वर्ग के लोग
खरीद-फरोख्त कर चुके हैं
यही लोग क्रान्ति से बलात्कार कर चुके हैं।
इसीलिए तो -
क्रान्ति देवी वेश्यायों के कोठों पर
ग्राहकों की प्रतीक्षा में बैठी है।
हरेक मजदूर और किसान के हाथों में

लहू के छाले
सदियों से स्थायी वास बना कर बैठे हैं।
सिपाही के बूट और पेटी
और कर्मचारी की कलम स्याही बन
क्रान्ति खुद ही अपने आप में उलझी हुई है
कहीं एक कौर और एक रात का बसेरा बन
कहीं शाबासी और तगमा बन
क्रान्ति वास्तव में
मानव की एकता और चेतना न पाकर
अनाथ हो चुकी है
क्रान्ति खुद ही अन्दर से जार जार रो रही है।

मनुष्य की कुल परम्परा

मनुष्य, मनुष्य को क्यों
इतना सस्ता आंकता है
मुझे लगता है मनुष्य
अपने ही परिवार की तरह।

पाँच अरब सन्तानें हमारी
विश्व हमारा घर है
बँध कर खून के रिश्ते से
मनुष्य है हमारी कुल-परम्परा।

मैं

मैं धरती हूँ मैं आकाश हूँ
मैं सूर्य का एक अंश हूँ
मैं ज्वाला हूँ मैं रखवाला हूँ
मैं मानव का एक रंग हूँ।
मैं शान्ति हूँ मैं क्रान्ति हूँ
मैं जग का अनन्त प्राण हूँ

मैं न्याय हूँ मैं सत्य हूँ
मैं असहाय गरीब का त्राण हूँ।
मैं रात का चन्द्र तारा हूँ
मैं दिन का शीतल पवन हूँ
मैं सागर हूँ मैं गागर हूँ
मैं मानव का एक प्रकार हूँ।
मैं वरदान हूँ मैं आशीर्वाद हूँ
मैं खुद ही अपना आधार हूँ
मैं व्यथा हूँ मैं कथा हूँ
मैं खुद ही एक संसार हूँ।
मैं बड़ा हूँ मैं छोटा हूँ
मैं देवता का एक रक्त-कण हूँ
मैं गोहार हूँ मैं हुंकार हूँ
मैं मानवता की एक भाषा हूँ
मैं दुःख हूँ मैं दर्द हूँ
मैं ही जग की आशा हूँ।
मैं झन्कार हूँ मैं क्रन्दन हूँ
मैं जीन का एक तार हूँ
मैं गीत हूँ मैं प्रीत हूँ
मैं ही जग का प्यार हूँ।
मैं खून हूँ मैं पसीना हूँ
मैं जग वाटिका का माली हूँ
मैं थल हूँ मैं जल हूँ
मैं धरती का एक खेत हूँ।

गीत

क्यों भागती है मेरी जिन्दगी खुद से डर कर
क्यों रोती है मेरी जिन्दगी दिल को दुखाकर।

भीड़ है लोगों की पर अपना कोई नहीं है
इतने बड़े संसार में सिर्फ मैं ही अकेला नही हूँ।

क्यों सोचती है वातास तूफान कैसा होता है
वसंत में मुस्कराती ऋतु शरद में क्यों रोती है।

दिनभर धूप लगती है रात भर चन्द्रमा
आती क्यों है हमेशा रात कल सुबह होने के लिए?

आज का मानव

अपनी नस-नस में, दृष्टि-भंगिमा में
प्राण-तन्तुओं में
सम्पूर्णता की तलाश में
अर्थ और मूल्य के लिए
पल-पल खुद को तोड़ता-मरोड़ता मानव।
विद्रोह और विप्लव की आग है आज का मानव
सुर्ख लहू का समुन्दर है आज का मानव!
क्योंकि मानव कल की स्वीकृत
विवशता से दब कर बिलबिलाते रहने की
परिस्थिति को स्वीकार नहीं कर सकता।
किसी परिधि या सीमा के अन्दर
वह सांस नहीं ले सकता।
वह जिन्दा है इस खुले आसमान की तरह
खिलखिलाता है इस धरती की तरह फैलकर
आसमान को अपने कदमों तले रौंदता
बादलों को अपनी मुठ्ठी में कस कर
वायु की सवारी करता
सौर-मण्डलों के नक्षत्रों से बतियाता
जिन्दा रहना चाहता है आज का मानव!

आदमखोर पेड़ों को उखाड़ दो

हे युग द्रष्टा! हे सत्य द्रष्टा!!
युग की महा शक्तियों, सच्चे युग निर्माताओं
मेरे युवा बन्धुओं!
आओ इस जीवन का एक नयी व्यवस्था में
श्रृंगार करें
आओ हम साँझी भाका में नवगीत गाएँ।
अब उठ्ठो, निर्माण की प्रबलता लिए
अब जागो, जिन्दगी की स्याह रातों को तिलाञ्जलि देकर
जीने का बेहतर परिवेश सृजित कर
सच्चे रिश्तों का निर्माण करें।
हमें जरूरत है एक उगते सूर्य की प्रखरता की
हमें जरूरत है मानव समानता की व्यापकता की।
इसलिए हे मेरे युवा बन्धुओं।
होम देना है हमें अपनी जवानियों को
मानव अधिकार के पक्ष में
हमें अपनी सामूहिक हुँकारों से
उन्मुक्त करना है समूची मानवता को
और पसीने की धारा बहा कर
मानवता के कलंकों को धोना है
एकता की ताकत से
आदमखोर पेड़ों को उखाड़ फैंकना है।

जीवन की खेती

एक पल के सपने, हकीकत और कल्पना में
उलझा हुआ क्षण ही क्या जीवन है?
माया-ममता, लोभ-ईर्ष्या, संघर्ष क्रान्ति ही क्या जिन्दगी है?
संयोग-वियोग, घटना बगैरह ही क्या जिन्दगी है?
जिन्दगी क्या एक टुकड़ा रोटी है?

लगता है यह जिन्दगी कुछ भी नहीं है।
कुछ भी तो नहीं।
क्योंकि यह कहीं तो गुम है कहीं भयभीत
कहीं सड़ी गली है तो कहीं कुण्डित
कहीं लोप है तो कहीं मुरझायी हुई
खेतों की मेड़ों पर यह कहीं गुम हो चुकी है
बंजर जमीन के टुकड़े-टुकड़े में कहीं लोप हो चुकी है।
लोप हो चुकी इस जिन्दगी की तलाश की जानी चाहिए
इसका तोल मोल होना चाहिए
अब इस विश्व के आयतन में
चेतना और मानवता की खाद डाल कर
जिन्दगी की खेती की जानी चाहिए
विप्लव का हल जोत कर
जिन्दगी की खेती की जानी चाहिए।

असम्बद्ध प्रसंग

निपट अकेला हूँ मैं
दुपहर की खामोशी में
आसमान की तरह फीका चेहरा लिए हुए
इतनी बड़ी दुनिया में।
आसमान की ओर गौर से देखता हूँ
आसपास झाँक कर देखता हूँ
यह तन, यह मन यथावत ही हैं
पर इस खामोशी में, चुप्पी में
सिर्फ मैं ही हूँ जो निपट अकेला है।
मेरे सामने महाशून्य का साम्राज्य
अपनी विशाल काया में खड़ा
मुझे निगलने ही वाला है यह समय।
कौवे की तरह पीपल की टहनी पर बैठा

हड्डी को अपनी चोंच से ठूंगता
जिन्दगी बसर करने के लिए
कौवे से सबक सीखने को वाध्य हूँ।
नीले आसमान की गहराई में
एक टुकड़ा आजाद बादल उड़ रहा है
कोमलता का सबक सिखाता मुझे
पर इस बादल के कैनवास पर
कहीं भी मेरा मन टिक नहीं पा रहा
नहीं है मेरे सपनों और ख्वाहिशों
की मामूली तस्वीरें भी वहाँ नहीं है
मैं मायूस और उदास
उस बादल की ओर देख रहा हूँ अपनी तरह।
चहुँओर मैं
सिर्फ 'मैं' को ढूँढ रहा हूँ
पर मैं वहाँ उपस्थित नहीं था
फक्त मैं तन से खड़ा
उस शून्य आसमान और बादल की तरह
वहाँ होते हुए भी अनुपस्थित था।
रोमन कैथोलिक के उस विशाल चर्च में
पाँच सदियों से
शान्ति और प्रेम का पाठ सिखाते हुए
सोये सन्त फ्रान्सिस के तन की तरह
मेरा जिस्म सिर्फ वहाँ था
शान्ति और प्रेम का गीत गाता
मेरा मन तुम्हारी तलाश में
कहीं चुपचाप मेरा मन
मुझसे कहीं दूर खड़ा था
तुम्हारी तरह अनगिन
और मेरे जैसों के साथ आत्मसात होकर।

महाजन्म

मनुष्य जनम में मनुष्य को
जिन्दगी भर अनवरत सूर्य-दीप की तरह जलते रहना पड़ता है।
वीभत्स युग के आयतन में
क्रान्ति का बीज बोना पड़ता है
कदम कदम पर
आग की तरह क्रान्ति को प्रस्फुटित करना पड़ता है।
नहीं तो मानवेतिहास में
निर्जीवता पाषाण की तरह
लावारिस युग के गर्भ से कलंकित मानव को पैदा करेगी
काले आयामों का ही शायद वजूद रहेगा
और शायद मानव कथाएं फासिलों में तब्दील हो जाएँगी
हकीकतें सिमट जाएँगी।
क्रान्ति सरहदों के संघर्षों के लिए नहीं
सत्ता की प्राप्ति के लिए क्रान्ति नहीं
क्रान्ति को तो
मानव के जन्म-सिद्ध अधिकार के लिए जन्म लेना होगा।
क्रान्ति को तो किसानों, मजदूरों के ठण्डे पड़ चुके
चूल्हों में जन्म लेना होगा।
क्रान्ति को तो खेतों खलिहानों से जन्म लेना होगा
क्योंकि क्रान्ति का जन्म ही दरअसल मानव का महाजन्म है
मानव का मानव की तरह जी सकना ही
क्रान्ति की अन्तिम सफलता है
उन्नति की चरम सीमा है।
ऐसा होने पर मानव स्वयं
अमर अस्तित्व ग्रहण करके
विशालता और सम्पूर्णता लिए
अपने खून से

शपथ लेगा

कलंकित चोले को

वैतरणी तैरा कर

उद्घोषणा करेगा नये जन्म की

क्रान्ति के गर्भ से तब

महामानवों का जन्म होगा।

दो कविताएँ

(1)

गरीब मरता है

भूख से

रोग से

शोषण से

मरता है सिर्फ एक बार

आदमी की मौत।

(2)

अमीर मरता है

शोक से

अफसोस से

लोभ से

जीते जी हजारों मर्तबा

वह पशु की तरह मरता है।

छटपटाहट और माहौल

इस वक्त मैं स्तब्ध हूँ

वर्फ से ऐंठी हुई उँगलियों की तरह

अभी मैं शायद जिन्दा नहीं हूँ

प्यासे समुद्री यात्रियों की तरह!

उजाले छेंकने वाले पहाड़ों को

विस्फोट से उड़ा देना है मुझे।

लुटे हुए अधिकारों की जनता की शक्ति बटोर कर
ठण्डी मिट्टी के ढेर ही क्यों न हों
जघन्य आक्रोश की गोली से
मार गिरा देना है उन्हें और
शून्य जिन्दगियों में नये सूर्य उगा कर
एक नये वसंत को सजाना है मुझे।
ऐसा वसंत
जो सिर्फ मानव समाज में ले आए
समानता की ढेर सी रौनक।
इसीलिए, सोना नहीं है मुझे आज के बाद।
हाँ, अब मुझे सोना नहीं है
इस उनींदी स्थिति की चादर ओढ़कर
एक पल के लिए भी सोना नहीं है मुझे।
जागरण के ट्रेन्च से साहस की हुँकार लगाते
अपने दुश्मन, अपने ही दुर्बल पक्षों के बरखिलाफ
संघर्ष छेड़ना है मुझे।
जिन्दगी को सच्चे अर्थों में
उजाले से श्रृंगार कर
मानव की सच्ची स्थिति की प्रबलता लिए
मानवता और मानव आकांक्षा के अभियान के
तराने गाते
वर्ण-भेद की भयावह खाई को पाटते
अपनी रफ्तार, अपने कदमों की रफ्तार से
उस निष्कर्ष तक
जहाँ इन्सानियत की साफ साफ शिनाख्त हो सके।

मेरा लाल मुर्गा बांग देता है

मेरा लाल मुर्गा
छरहरा और फुर्तीला
चमचम चमकता लाल रंग का

नौ सींगों वाला मेरा मुर्गा
इसका तीक्ष्ण नौ सींगों वाला सिर
हिमालय की तरह अचल और धीर
सगरमाथा (एवरेस्ट) है वास्तव में
इसकी आवाज में कितनी शक्ति है
इसकी गर्जन के समक्ष 'सायरन' की कोई औकात नहीं
इसकी थरथराहट के समान किसी में ताकत नहीं
यस संसार को कँपा देने वाली गर्जन लिए
अकेला ही बांग देता है
जब रात के अंधकार में
अपनी गर्जन में प्रलय की तीक्षणता भर देता है
तो होती है सुबह और दुनिया जाग उठती है।
अन्धकार से उन्मुक्ति की अनवरत छटपटाहट लिए
यह लाल मुर्गा
एक तंग, संकरे खोर में रहता है
इर्द-गिर्द अपनी पोथी (मुर्गी) और चूजों को
रख कर
पड़ा रहता है बेचारा हमेशा अपनी बिष्ठा के ढेर पर।
शक्ति और गुणों से भरपूर होने पर भी
अपने परिवार और खुद तक की
देखभाल और रक्षा करने तक असमर्थ है।
उसकी आँखों के सामने
उसी के परिवार के किसी सदस्य की
कोई गर्दन मरोड़ दे तो भी
यह चुपचाप देखता रहता है।
अपनी गर्दन पर तेज हथियार का बार भी
यह चुपचाप सहता रहता है।
ऐसे यह मुर्गा
अपना लाल खून बहा कर

युगों से खुदगर्ज आदमी की थाली का
लजीज पकवान बनता आ रहा है
फिर भी अत्याचारी मानव को
अपना मालिक समझता आ रहा है।
लोगों को अल्सुबह जगाने का संकेत देता रहता है।
अभी तक मानव ने इसे अपना नहीं समझा
अपना सहयोगी या शुभचिन्तक नहीं ठाना।
अन्धकार के विरोध में छटपटाता मुर्गा
गंदे खोर में दमघोंटू वातावरण में पड़ा मुर्गा
एक दिन निश्चय ही आजादी की बांग देगा
गरजता एक दिन संसार के शिखर पर चढ़ कर बांग देगा
बाहों में सम्पूर्ण विश्व को कस कर
अपने परिवार का भी रक्षक बनेगा।

ब्रह्मपुत्र और कामाख्या पहुँच कर खुद का अवलोकन करते हुए

ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे
मेरे जिन्दा लोगों की लाशें बहती जा रही हैं।
पानी के बहाव के साथ तैर न सकने
या नाव चला न सकने के कारण
मेरे लोग सागर में डूबते जा रहे हैं।
ब्रह्मपुत्र में डूबकर मरे मेरे लोगों की लाशों का
पड़ोसी गिद्ध, जंगली बिल्ली और गीदड़
आपस में झगड़ते भोज लगा रहे हैं।
आजकल इस इलाके में
मेरे लोगों की हड्डियों को इकट्ठा कर
ब्रह्मपुत्र के किनारे बाँध बाँधे जा रहे हैं।
पता नहीं किस देव-श्राप से
किस युग के पाप से
मेरे लोगों की कथाएं आँसुओं से लिखी जाती रहीं

मेरे लोगों के टूटे सपने
पसीने के एवज में खरीद-फरोख्त होते रहे।

अपने ही खून-पसीने से पकी फसल को भी
मेरो लोंग
अपनी नहीं बता सकते
पता नहीं क्यों
अपने घर-आंगन में भी
इन्सान की तरह जिन्दा नहीं रह सके।
ऐसे पाप और श्राप के संसार में
मेरो लोगों की आकांक्षाएँ
दुःस्वप्नों में तब्दील हो चुकी हैं।
यह कोई दन्त्य-कथा नहीं है
यह कोई काल्पनिक कहानी भी नहीं है
ये तो करोड़ों बदकिस्मत लोगों के टूटे सपने हैं
ये तो मर चुके मेरे लोगों के मृत
इतिहास के पन्ने हैं।
मेरे पुरखों ने ब्रह्मपुत्र के पानी में नहा कर
अपने ऊपर लगाए इन पापों और श्रापों को धोया नहीं था?
क्या मेरी माओं, दादियों और नानियों ने
कामाख्या माई के चरणों में सिर रख कर
अपनी सन्तानों के सुख और शान्ति के लिए
मनौतियों नहीं की थीं?

यहीं देवी-देवताओं को धूप दीप नेवैद्य चढ़ा कर
पूजा करते हुए भी सदियाँ बीत चुकी हैं
अपनी मेहनत की पकी फसल का
पहला चढ़ावा चढ़ाते भी सदियाँ बीत चुकी हैं।
खुद बाघों और हाथियों से लड़ कर

बसाई हुई बस्ती में
आज मेरे लोग कहाँ हैं? किधर हैं?
अपने खून के एक एक कतरे से लिखे इतिहास
के पृष्ठों में
मेरे लोगों के नाम कहाँ हैं? किधर हैं?

ब्रह्मपुत्र की लहरें भी
मेरे ही लोगों के घरों को बहा कर ले जाती हैं
हर साल बाढ़ भी
मेरे ही लोगों की फसलों को बरबाद कर देती है
छोटी सी जमीन धसकने से
मेरे लोगों की छाती चटख जाती है
न जाने कौन देवी देवता हैं जो क्रोधित हैं
मेरो लोगों पर?
कामाख्या और ब्रह्मपुत्र का आशीर्वाद नहीं है
क्या मेरे लोगों पर?
देवी और देवताओं की तो सभी पर
समान दृष्टि और आशीर्वाद होना चाहिए
कामाख्या माई और ब्रह्मपुत्र को तो
सभी की रक्षा करनी चाहिए
हमारे पूज्य देवता कोई और है क्या?
हमारा अभीष्ट संसार कोई और है क्या?

विस्मृति की स्मृति में

विस्मृति में कितने आते रहते हैं
उनकी गिनती कर सकना मुमकिन नहीं है
उनका हिसाब-किताब रखना आसान नहीं है
कौन कहाँ है, कुछ पता नहीं
फिर भी मेरी स्मृति के देश में उनका वजूद है
पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण के विस्तार में

ठुँसे पड़े हैं मेरी विस्मृति के आयतन में
दिवास्वप्नों की प्यार भरी मेरी आँखों में
उलझे हैं हमेशा हमेशा
प्यार भरी वेदना जगाते हैं हर क्षण
मेरी स्मृति में जिन्दा रहने वाले
मेरी आँखों की पुतलियों में नाचने वाले!
मेरी अज्ञात स्मृति में सांस लेने वाले!
कितने होंगे
जिनकी रोदन भरी पुकार मैंने कहाँ सुनी है?
मैंने इन्हें सिर्फ अनुभव की आँखों से देखा है
मैं आसपास के क्रन्दनों और पुकारों को
भूख और शोक को देखा है, सुना है
फिर भी मेरी अज्ञात स्मृति में सांस लेने वालों
तुम सभी को
मैंने अपने खून की कसम से अपना माना है
मैं तो अपनी अज्ञात स्मृतियों से एक रिश्ते में बंधा हूँ!
तुम जहाँ हो, जैसे हो
जिस हालत और अवस्था में हो
जिस कार्य और धर्म में हो
जिस जीत और हार में हो
जिन सरहदों पर युद्धरत हो
जिस क्रान्ति और संघर्ष में झोंके गए हो
यश, आराम और हर्ष-उल्लास में हो
तुम सभी सभी को
मेरी अज्ञात स्मृतियों में सांस लेने वाले
अनगिन-मेरे अपनों के लिए
मेरी इच्छा-कामना भी
मेरी अज्ञात स्मृतियों की मानिन्द है
टूटकर बिखर कर भी

फैल कर जिन्दा रहने वाले लोगों की मानिन्द।

आकाश-गंगा के देश में मटमैली नदी

परधीनता में लपेट कर
मानव इच्चाओं आकांक्षाओं, सपनों और दिवास्पप्नों को बहाती
घुन खाए इतिहास को विश्व की बंहगी में उठाए
बह रही है एक मटमैली नदी।
मटमैली नदी के दोनों किनारों पर
युगों से निःसार तट, अनन्त काल से प्यासे
पपीहे की प्यास बन
निर्मल पानी की प्रतीक्षा में बैठे हैं।
मटमैली नदी पानी की तेज धारा बहाती जा रही है
एक युग, एक इतिहास और अभिशप्त तटों को
मैं सिर्फ एक मूक दर्शक हूँ
मटमैला पानी
इस मटमैली नदी में
एक युवा पीढ़ी बहती जा रही है
एक जीवित इतिहास का गर्भपात हो रहा है
जिन्दा लाशें बहती जा रही हैं
मानव कौमों के बड़े बड़े हिस्से
इसी तरह मटमैली नदी में
युगों से बहते बहते समाप्त होते जा रहे हैं।
नदी मटमैली है इसीलिए
आदमी नदी के किनारे खड़े होकर
अपना प्रतिबिम्ब देख नहीं सकता
अपने वजूद का अहसास नहीं कर सकता।
क्योंकि नदी मटमैली है इसीलिए खुदगर्ज होती है।
इन्सानियत को भुला कर
सिर्फ खून की टेढ़ी-मेढ़ी सरहदों पर

लोग टहलकदमी करते हैं
मटमैली नदी उन्हें स्वीकार करती है
क्योंकि आदमी अकेलेपन के अभिशाप से अभिशप्त है
ऐसी नदियों की तेज धाराएं
केवल मटमैला अस्तित्व लिए
एक दूसरे से कटे, वैचारिक खेमों में बंटे लोग
खुद को धिक्कारने को मजबूर होते हैं...
क्योंकि किस्मत की तलाश में
हथेलियों की टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों में उलझकर
अपने वजूद को बन्धक रखने वाले लोग
मटमैले पानी में
अपने वजूद की तलाश करते हैं।
अपनी तलाश में खुद नाकामयाब होकर
अपनी ही गालों पर खुद थप्पड़ मारने की
बातें करते हैं
अपनी ही छाती में खुद छुरा भोंकने की बातें करते हैं।
इस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी
एक समूह अकेले लोग
एक समूह खोखले लोग
एक समूह दुबले-पतले लोग
जिन्दा मुर्दों के प्रमाण-पत्र
अपनी छातियों में चिपका कर
इस मटमैली नदी के किनारे
खुद अपनी चिता सजाने की बातें करते हैं।
ये अफवाहों की नींव पर खड़ी व्यवस्था में जीता आदमी
निपट अकेला है
और निपट अकेले लोग वास्तव में अन्दर से खोखले होते हैं
ऐसे खोखले लोगों से बना समाज
सिर्फ एक खण्डहर हो सकता है

मानवेतिहास में एक बड़ा सा 'वैक्यूम' सृजित है
क्योंकि यह समाज और खोखली व्यवस्था
आदमी के लिए एक कफन के अलावा
और कुछ नहीं है
इसलिए मानव समाज के सिरों के ऊपर से होती हुई
आजभी बह रही है यह मटमैली नदी।
यह नदी तो
आदमी के अन्दर का सीमित कड़वा सच है
ये मटमैले आकार तो
आदमी आदमी के बीच की खाईयाँ हैं।
इस नदी में बह कर समाप्त होते जा रहे
लावारिस युग को निहारते
जो बूढ़ा रोगी खीझ रहा है
वह वास्तव में बदनाम युग है।
अकेला आदमी एक रुग्ण युग है।
अकेले आदमी में उलझा युग
इतिहास का फासिल पृष्ठ है।
फासिल बन जिन्दा रहने वाले लोगों को
अकेले मटमैली नदी के किनारे बन कर जीना नहीं चाहिए
अब तो मटमैली नदी
आदमी की ताकत के सिर से होती हुई
समझौते की सीढ़ी चढ़कर
बह नहीं सकती
युग को सिर पर उठा कर
लोगों को अपने अधिकारों के लिए
'क्रेटर' की तरह एक होकर
मटमैली नदी के विरोध में उठना चाहिए
पार करनी होगी अब आदमी को आकाश-गंगा
और मटमैली नदी में आग लगा देनी होगी।

भानुभक्त आचार्य की स्मृति में

हर सुबह भानु उगता है
और हर साँझ डूब जाता है मगर
यहाँ तो हमेशा के लिए
21 आषाढ़ का भानु लगातार
चमकता आ रहा है।
हे भानु।
तुमने ही तो दिया था नारा
जन हितायः
और हमें भी रटना सिखाया था तुमने
इसीलिए आज हम
जन हितायः करते करते
दूसरों के लिए मरते-मरते
खुद जीना तक भूल चुके हैं,
भूल चुके हैं, उफ़! भूल चुके हैं
अपनी संसार को सजाने तक की फुर्सत नहीं है
हमें यहाँ
तुम तो वचनबद्ध थे
पर हम दिन-प्रतिदिन
अव्यवस्थित और अस्त-व्यस्त हो चुके हैं।
यस सच है भानु
तुम्हारे राम-लक्ष्मण तो
खून की संधि रेखाएँ खींचने
लगाते हैं हमेशा
हिमालय की हिमाच्छादित
वादियों से लेकर
मरुभूमि की छाती तक
मानव को प्रताड़ना देने लगे हैं।
विवशता से या बाध्यता से

औरों के ही इतिहास की मूर्ति
स्थापना कर...
औरों के ही संसार का निर्माण करते
बिकी हैं सीताएं और बिके हैं राम भी
हाट के बाजार में अति सस्ते बन
नहीं तो... आज इन गाँवों की
झोंपड़ियों में
आकर देखो एक बार
कि किस तरह-गरीब किसान
वे सर्वहारा की सन्तानें
भूख से रो रहे हैं - भूखे पेट सो रहे हैं,
घोंसले में प्रतीक्षारत परिंदों के
बच्चों की मानिन्द
करुण और दर्दनाक वातावरण की सृजना कर
अपने ही घर के अन्दर उनके करुण-क्रन्दन
और पुकारों के लिए
अपने ही हृदय की कुंठित आवाजों के लिए
आज यहाँ बोल देने वाला कोई नहीं है
इन समस्याओं की दीवारों को
यहाँ गिरा देने वाला कोई नहीं है
मिटा देने वाला कोई नहीं है।
इस अतिवृष्टि और बादलों की मार खाए
देश में
तूफान बन जूझने वाला कोई नहीं है
राम और सीता बन लड़ देने वाला कोई
नहीं है।
इसीलिए है भानु!
तुम्हारी सन्तानों का देश
एक खाली घर है!

एक श्रापित घर है!
इस तरह
अपने ही घर के शत्रुओं से पराजित हो
अपने ही घरों का निर्माण करना छोड़
विदेश गमन किए नामर्द राम और लक्ष्मणों को,
दासत्व की जंजीरों से जकड़े होने पर
'जी हजूर' कहते
पत्थर की मूर्तियों को
अपनी आत्मा बेचने को बाध्य होना पड़ रहा है
ईश्वर की उपासना करनी पड़ रही है।
पर आज हमारे अस्तित्व को
सिर्फ दासत्व के महलों में ही नहीं
बल्कि दासत्व के संकीर्ण पंजों से
निकाल कर
उन्मुक्ति का शंखनाद करना है
मानव अधिकार के लिए
मानव समानता के लिए
अब लड़ देने का वक्त का आ गया है
अब जागने का वक्त आ गया है
वक्त की मांग के मुताबिक
युग के साथ दौड़ने का वक्त आ गया है
आज इन्सानियत के लिए
विचारों में परिवर्तन लाने का वक्त आ गया है।
इसीलिए है भानु!
तुम्हारी 'रामायण', 'वधुशिक्षा' और 'भक्तमाला'
आज हमारे लिए पर्याप्त नहीं हैं
हमें तो हजारों समस्याओं का
समाधान कर
अपने सच्चे वजूद की

तलाश करनी है
सच्चे इतिहास का निर्माण करना है।
इसीलिए हे कविजी!
तुम्हारी इस महान जन्म जयन्ती पर
हम प्रतिज्ञा करते हैं -
तुम्हारी उन कविताओं की पंक्तियों में
उन गरीबों पीड़ितों के नारों में
हमारे अधिकारों की गूंज होगी
अवश्य उनकी गूंज होगी।

आवाज

मन्दिर से आई घण्टी की आवाज
आर मस्जिद से आई मौलवी की आवाज
मुझे एक समान सुनाई देती है
मैं सुन रहा हूँ इन दोनों आवाजों को
पर दोनों में कोई भिन्नता महसूस नहीं होती।
गिर्जाघर के घण्टे की आवाज
मन्दिर से टकराकर
प्रतिध्वनित होती सुन रहा हूँ
सभी प्रार्थनाओं की आवाजें
मिश्रित हो
एक मधुर धुन में परिवर्तित हो गई हैं
और मेरा मस्तिष्क
मन और प्राणों का स्पर्श पाकर
कोमल और स्निग्ध बन चुका है
मैं आत्मविभोर हो चुका हूँ।

कर्त्तव्य

लक्ष्य होता नहीं है कौवे का
एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक उड़ने का

लक्ष्य होता है उसका
सम्पूर्ण पृथ्वी को छू लेने का
पर कर पाता नहीं वह यद्यपि परिक्रमा पूरी
क्योंकि उसके उड़ने की सीमा
पूर्व निर्धारित है।
उड़ सकता नहीं वह उस सीमा से परे
दिल में तमन्नाएं होते हुए भी
पर वह उड़ना नहीं छोड़ता
पृथ्वी की परिक्रमा करना नहीं छोड़ता
उसका लक्ष्य
आसमान के रास्ते
कभी भी समाप्त न होने वाली उड़ान है।

शान्ति

खुद शान्ति को गुमा कर
अपने अन्दर शान्ति की तलाश कर रहा हूँ
पर आज तक ढूंढ नहीं पाया हूँ
यदि तुम पृथ्वी पर होती
तुम्हें पकड़ कर लाता और अपना बन लेता
आकाश और पाताल में भी होती तो
ढूंढ कर लाता
सूर्य-चन्द्र और ब्रह्माण्ड में भी होती
मैं तुम्हें सहज ही पा लेता
पर तुम तो
मुझमें ही व्याप्त हो
और मुझमें ही गुम हो गई हो!
कहीं तुम मेरे हृदय के आकाश में तो नहीं हो
मानसपट में कहीं उलझी हुई नहीं हो
या मेरी इच्छाओं में समाविष्ट तो नहीं हो?

मेरी सफलताओं और विफलताओं में तो नहीं हो?
मैं तो युगों से तुम्हें खोज रहा हूँ
पर तुम तो मुझमें व्यापत होकर भी
मुझसे बहुत दूर हो
तुम कौन हो शान्ति, तुम कहाँ हो शान्ति?
मैं तुम्हें पहचान नहीं सका हूँ।
तुम्हें प्राप्त करने के लिए
मैं स्वयं को पहचान नहीं पाया हूँ
मैं खुद को जान नहीं पाया हूँ

मानव मैं तुम्हें तलाश रहा हूँ
अपने मन को
आँखों के आगे खड़ा करके
खुद को शून्यता से देख रहा हूँ!
मन के नयनों से -
आत्मा के आकार को देखने की इच्छा होती है!
प्रत्येक युग में मनुष्य के रूप में जन्म लेकर
मैं तुम्हें ढूंढता रहा!

मानवनिर्मित इस संसार में
मानव-अरण्य में
खुद उलझ कर खुद में
तुम्हें पूछता रहा
तुम्हें ढूंढता रहा!

इतने सारे युगों के बाद भी
मैं तुम्हें पूर्णरूप से पहचान नहीं सका
तुम्हारे साथ आत्मसात नहीं हो सका
तुम सिर्फ अनुभूति ही लगने लगे

वर-पीपल के पेड़ पर कोयल के
मधुर स्वर में घुल-मिलकर
तुम्हारा अहसास मेरे वजूद को छूने लगा है।

तुम्हारा निराकार रूप
मेरी आँखों में उभरने लगा है
फिर भी अभी भी स्पष्ट रूप में
तुम्हें मैं अपनी आँखों की पुतलियों में
समा नहीं पाया हूँ।

मैं प्रत्येक मानव जनम में
तुम्हें ढूँढ रहा हूँ
आत्मा की आवाजें
और भग्न गीतों में
तुम्हें खोज रहा हूँ

यह संसार और माया
तुम नहीं हो।
मेरे देखे हुए और पाए हुए ये सभी
तुम अवश्य ही नहीं हो।

मालिक और कुत्ता

कुत्ते का मालिक उसे
अपने शौक या स्वार्थ पूर्ति के लिए
कन्धे पर उठा कर चलता है।
उस वक्त वह कुत्ता
खुद को मालिक की तरह समझता है
अपने बिरादर कुत्तों को देखकर भौंकता है।
मालिक के डर से उस वक्त

कुत्ता चुप रहता है और सहता रहता है
पर हमेशा कुत्ते को
मालिक कन्धे पर उठाकर नहीं चलता
जमीन पर छोड़ देता है।
एक क्षण के बाद
उस कुत्ते को आखीर
अन्य कुत्तों की तरह जमीन पर रहना पड़ता है।
जब मालिक का वह कुत्ता
मालिक के कन्धे से जमीन पर आता है
दूसरे कुत्ते उस पर भौंकने लगते हैं
उसे भगाने और काटने के लिए दौड़ते हैं
उस वक्त मालिक
महल के अन्दर जा चुका होता है
वह बेचारा मालिक का कुत्ता अकेला पड़ चुका होता है।

विडम्बना

जानवरों को लोग
अपने स्वार्थ के लिए पालते हैं
उन्हें अच्छा खिलाते पिलाते हैं
अपने स्वार्थ के लिए
यह तुम्हें और मुझे पता है।
पर तुम्हें और मुझे भी
अपने स्वार्थ के लिए किसी ने
उस जानवर की तरह रखा है
यह कटु सच जानने की हमने कोशिश नहीं की है।
फिर भी हम अनजान हैं उस जानवर की तरह।
वह जानवर होकर अनजान हैं
हम इन्सान होकर अनजान हैं
इस विडम्बना को ढोते
हम जी रहे हैं

यही इन्सान की नियति है।

हर सुबह

हरेक सुबह कफन बन आती है अखबार
मेरे सामने -
और हमारी लाशें
मुझसे न्याय मांगती हैं
अपनी ही मृत्यु की शोक-धुन बजाते
हजारों आत्माएं हर पल आती हैं मेरे सामने
रेडियो और टेलिविजन की आवाजें बनकर....
और प्रार्थनाएं करती हैं
जीवन-दान की
पर मैं यह सब
अनुभूत करता हूँ सिर्फ
आवाजों में देखता हूँ।
मेरे साथ ओस बन कर सुबह रोती है
मेरे साथ दिन भी किरिया बैठे बीत जाता है
मेरे साथ रात भी अन्धकार में विलीन होकर बीत जाती है।
इसी अंधेरी रात में
धर्म, युद्ध की घोषणा करता है
फिरकापरस्ती सरहदें बांधती है
पाप बड़ी सी चादर बिछा कर
आदमी से खून की भिक्षा मांगता है
इसी कारण आदमी की बलि चढ़ाकर
पाप की बेदी में भोग चढ़ाते हैं
खून के नशे में धर्म
खून के नशे में सरहदें
और खून के नशे में फिरकापरस्ती के
विश्व को हिला देने वाले ठहाके लगाते हैं

और विश्राम करते हैं कुछ देर
नागासाकी और हिरोशिमा बन
इराक और युगाण्डा बन
मन्दिर, मस्जिद और गिर्जा बन
मानव हत्या और मौत बन कर...।

मुझे नहीं पहचानते

तुमने मेरे बारे में जो भी सोचा है
वह मैं नहीं हूँ
तुमने मुझे जिस रूप में देखा है
वह मैं नहीं हूँ।
कल तुमने जिसे जाना था
देखा था
वह मैं नहीं हूँ।
विश्वास करो मेरा
तुम मुझे पहचान नहीं सकते
तुम मुझे देख नहीं सकते
क्योंकि जो रूप तुमने देखा है
वह रूप मेरा नहीं है
मेरे बोले हुए शब्दों में
आवाज मेरी नहीं है।
क्योंकि मैं
मैं अपने ही रूपों में लुप्तप्रायः हो चुका हूँ,
अपनी ही आवाजों में खो चुका हूँ।
यही कारण है
मैं खुद को ही ढूंढ रहा हूँ
वक्त आँखों से झाँक कर
भविष्य के संसार में
खड़े हो काया के धरातल पर
कल के इन्सान की मुहब्बत में।

‘गान्तोक‘ : एक पोर्ट्रेट

भ्रष्टाचारियों की फाइलों में दबा दिन भर
कालाबाजारियों की तिजोरियों में कैद रात भर
घुटता, छटपटाता थरथर काँप रहा
यह गान्तोक शहर!

थका शरीर और
मृत विश्वासों को ढोता
मंत्रियों और सचिवों के दफ्तरों में झांकता दिनभर
आश्वासनों से हैरान हुए बेरोजगार के
घिसे जूतों का नगर
यह गान्तोक शहर!

आज मर कर भी
कल के सपने में जिंदा रहने
निमठित, निना और निनाग्मा के
मन को आराम देने वाला हवा घर
यह गान्तोक शहर!

विसंगति और विषमता से जख्मी होकर
‘हार्ट एटैक’ का शिकार
अभागिन विधवा की इच्छा
यह गान्तोक शहर!

अपनी ही जवान बहू-बेटियाँ
होटलों के कमरों में
युक्लिप्टस की तरह नंगी
अतृप्त रात का अन्तिम प्रहर
यह गान्तोक शहर!

बुद्ध की मूर्ति को साक्षी रख कर ताशीलिङ में
शासन करने वाले लोगों द्वारा
लोगों को तोर्मा* बनाया देख कर
स्वयं बुद्ध बीच में हैरान पड़ा
यह गान्तोक शहर!

आधुनिकता के कफन में सजकर
अपने ही भविष्य की लाश पर
मर्यादाहीन मदमस्त जवानियाँ
बज्ररबट्टूयों का रखैल बनाया हुआ
यह गान्तोक शहर!

देश को शेष बनाकर भेष बदलने वाले
माँ का बलात्कार कर
भविष्य के साथ वर्तमान के सुख का सौदा करने वाले
पापी बेटों द्वारा जर्जर बनाया
यह गान्तोक शहर।

**भात या भुनी हुई गेहूँ के आटे को शहद में गूँथ कर बनाई हुई किसी पशु पक्षी या देवता के आकार की मूर्ति*

रात की मृत्यु

रात का साम्राज्य
अन्धकार में फैला है
व्याप्त चारों ओर का अन्धकार सभी को निगल चुका है
रात के सन्नाटे से सभी भयभीत हैं, त्रस्त हैं।
इसी अंधकार से जूझ रहा है
एक अकेला कुत्ते का पिल्ला
कूँ कूँ... करते चीत्कार करता जा रहा है
अन्धकार के साम्राज्य के विरुद्ध
अकेला युद्ध का ऐलान कर रहा है!
पिल्ले की आवाज सुन

दबड़ों के अन्दर मुर्गे छटपटा रहे हैं
इस तर्फ और उस तर्फ के घर से भी
आवाजें आनी शुरू हो गई हैं।
अन्धेरे में भी
जीवित प्राणियों के अस्तित्व का अहसास होने लगा है।
कुत्ते और गीदड़ भी भौंकना और हुआना शुरू कर दिए हैं
बाँसबाड़ी में उल्लू भी
अन्धेरी रात को चीरते चिल्लाने लग गए हैं
दिन में कहीं भी न दिखने वाला गोलसिमल पक्षी भी
अंधकार के विरोध में चिल्लाने लग गया है
उस पार पहाड़ी पह अंधेरी रात के डर से छिपे बन्दर भी
चिल्लाने लग गए हैं
रात के साम्राज्य के विरोध में
ठण्डी और अन्धेरी आक्रान्त रात के विरोध में
आवाजें उठने का आभास होने लगा है
बिहानी की प्रतीक्षा में
उजाले की प्रतीक्षा में
ठण्डी रात के साथ युद्धरत
अकेले कुत्ते के पिल्ले की आवाज के साथ
हजारों लाखों करोड़ों आवाजें मिलकर
रात के विरोध में उठ खड़ी हुईं हैं।
सुनो चारों ओर बड़ी गर्जन के साथ
पृथ्वी को हिला कर
मुर्गा बांग देने लग गया है।
हमारी छाती पर बैठी यह विशाल काया
काली रात अब ढलने को है
खाज खाए कुत्ते के पिल्ले को
हड्डियों गला देने वाली ठण्ड में मारने वाली
यह पापी अंधेरी रात अब मृत्यु के

कगार पर खड़ी है।
अब बिहान होगी
उजाला और धूप खिली बिहान
जहाँ कुत्ते और कुत्तों के पिल्ले
सर्दी से ठिठुर कर नहीं मरेंगे।

तुम और मैं

एक ही घर के अंदर
एक आकाश की छत के नीचे
तुम और मैं - प्रिय बंधु!
न तुम मुझे पहचान सकते हो
न मैं तुम्हें पहचान सकता हूँ
तुम उत्तर मैं दक्षिण
हमारी दुनिया पूर्व और पश्चिम।
हम अपनी दुनिया में रहने को बाध्य हैं।
पर तुम बेकार में यह क्यों कहते हो
'यह संसार तुम्हारा है - यह मेरा है,
तुम्हारे मिलन से मैं खुश होता हूँ
बिछोड़ में रो देता हूँ।'
तुम्हें व्यर्थ में ही न जाने
क्यों अपना मान लेता हूँ
तुम्हारे और मेरे सपने और यथार्थ
एक ही नदी के दो किनारे हैं
धरती और आकाश का
होता कहाँ है मिलन?
तुम्हारा और मेरा ऐसा ही है जीवन!

खुकुरी की धार पर नंगी कथाएँ

खुकुरी को आरन पर चढ़ाकर
हथौड़े से जितना भी पीट सको पीटो
आग में भोंक कर लाल लाल बनाकर
जीतना भून सको भूनो
सान लगा सको लगाओ
न लगाने से भी हो जाएगा
क्योंकि यह खुकुरी है
क्योंकि इसे जितनी धार लगाने
और सान लगाने पर भी
जितने ही कर्म-काण्डी होने पर भी
जितनी ही कर्म-धर्मी होने पर भी
यह हमेशा एक म्यान के अन्दर होती है
एक घेरे के अन्दर, या तो
डोरी से लटकी क्रूसीफाइड
हुई होती है।
इसलिये, यह इस स्थिति से
बाहर निकल कर, कभी भी
इस संसार में
एक छोटे से भी छोटा कर्म
अपने मर्म और धर्म को
अपनी मर्जी और ताकत से
कर न सकने की कहानी है इसकी
अपने लिए एक बार भी
मर न सकने की तासीर है इसकी।
क्योंकि यह खुकुरी बेचारी
हमेशा म्यान के अंदर रहती है
एक मालिक की कमर से लटकी
या तो शोषकों के 'शो केशों'
के अंदर इसे

संग्रहालयों में 'मेड इन जापान' का
लेबल चिपकाए
रखा भी जा सकता है
अपने ही पैरों पर
खुद ही प्रहार किया
जा सकता है।
अभी तक इसने विरोध करना नहीं सीखा है
जानती नहीं है यह अपने अधिकार
और अस्तित्व की बातें
क्योंकि यह केवल एक खुकुरी है!
एक लोहे का टुकड़ा!
इसे टिस्टा में डुबोना चाहो तो
डुबा सकते हो
आरन में चढ़ा कर पीटना चाहो तो
पीट सकते हो
आग में डालकर लाल लाल बना
कर जितना
भूनना चाहो भून सकते हो।

आदमी से आदमी तक

अपनी गाँठ में सफेद चींटी खाया चाँद
और जंग लगा सूरज बाँध कर
आकाश के गर्भ से निकलकर
हर सुबह
एक अस्त-व्यस्त रोगी दिन को जनम
देती है
और पैदा होती है एक प्रचण्ड निःस्सारता।
इसी आयतन के अन्दर
जिन्दगी की परेशानियों को उठाए

निःस्सार, निरुद्देश्य
भयावह सन्नाटा समेट कर
रात के कैदी सूर्य की लाश उठाए
संकीर्णता से जनमी व्याकुलता में
मानवनिर्मित जंजीर के
नागपाँस में स्खलित जवानी
और सिर पर पैर उठाए
आदमी की छाती में
खण्डहर उठाए आदमी
युगों से कतार में खड़े
अपनी बारी का इन्तजार कर रहे हैं
मानव अधिकार और कुछ आत्मसन्तुष्टि न पाकर
खाली हाथ फैला कर
हरेक द्वार और दालान पर
भिक्षा के लिए
मूर्तिवत खड़े हैं ये लोग
बरसों से ऊब भरी प्रतीक्षा संजोए
सदियों से यातना और तिरस्कार
और बासी सपनों की उम्र भोगते
बासी कल्पनाओं में अपनी ख्वाहिशों
की फंतासियाँ भोगते
खुद खण्डित, निष्क्रिय बन
आकाश-तले ये लोग
रात बन
या बेजान सड़क बन जीते हैं।
इन सड़कों को उठा कर अब इन रातों को झझकोर कर
खून और पसीने के मूल्य के लिए
मानव स्वतन्त्रता और आत्मसम्मान के लिए
समानता और पारदर्शिता के लिए

छाती में खून और दिल में आग इकट्ठा कर
खुले दिमाग और आँखें
मानव की सम्पूर्णता में बिछा कर
मानवता के लिए
प्रत्येक मानव में मानव तुम
नई सुबहें बन जन्म लेना
नए विश्व को लेकर आना।
जब उठ पड़ेंगे दिन
अन्धेरी रातों के विरोध में
जब कोई आवाज उठेगी
तब ये हाथ खुद उठ पड़ेंगे
और अन्धेरी सर्द रातें
खुद एक तपते सूर्य को जन्म देंगी
सभी अजन्मी सुबहें
सच्चे दिवास्पप्न बन जन्म लेगी
मानव के हृदय में
सच्चे सूरज का जन्म होगा
विस्तृत सागर ठाठें मारेगा
मानव रक्त से
आदमी सगरमाथा (एवरेस्ट) की
तरह ऊँचा उठ सकेगा
आकाश बन
अनन्त में फैल जाएगा।
मानव अभिव्यक्ति पाएगा
आदमी देदीप्यमान होगा
और आदमी सूर्य बन जाएगा।

मेरे अंदर का आदमी

मेरे अन्दर एक दूसरा आदमी जिन्दा है
जो अत्यन्त बेचारा है।
भयग्रस्त, शर्मिला है!
अरसे से मेरे अन्दर कैसे जिन्दा है
इस आदमी को कोई पता नहीं है
बाहिर की दुनिया में क्या हो रहा है!
कौन कैसा है? कहाँ क्या है?
इसे कोई मतलब की नहीं है।
वह सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगों का आदमी होकर भी
महाभारत के संजय की तरह
प्रत्यक्षदर्शी मात्र है
अपनी मृत्यु और हत्या का
अपने अन्त और पतन का
वह अपने लिए बोल भी नहीं सकता
हँस, रो और मर तक नहीं सकता
वह आँख, कान, नाक, हाथ-पैर वाला
लंगड़ा, अन्धा, बहरा अपाहिज आदमी है।
उसका कल भी पूरा नहीं था
आज भी अधूरा है
और कल भी उसका अपना नहीं होगा-
ऐसी शंका और त्रास मुझे है।
विगत, वर्तमान और भविष्यहीन
मेरे अन्दर जीता आदमी
आकाश के काले बादल छँटने पर
कहीं बाहिर आ सकता है।
(हो सकता है कहीं बाहिर आ जाए?)
अन्धेरी रात की मृत्यु के बाद
सुबह के उजाले के साथ

मेरे अन्दर का आदमी भी
कहीं जग सकता है
(हो सकता है कहीं जग जाए?)
उस पार (पहाड़ी) में मुर्गा बांग दे रहा है
मेरे अन्दर का आदमी कान लगाकर सुनने लग गया है
बकरियों के बच्चों की फूर्ति देखकर
मेरे अन्दर का आदमी भी छटपटाने लग गया है
छटपटाने लग गया है।

खण्डित मानव

इस विश्व में
एक ही सम्बन्ध में संधि-रेखा खींच कर
इस पार, उस पार बैठ कर
लोग उत्सव मनाते हैं
कीड़ों की तरह कुलबुलाते हैं
खण्डित-खण्डित जमातों को अपना कर
व्यापक मानव के खण्डित आकार लिए
भ्रष्ट लोग
कीड़ों की तरह कुलबुलाते हैं।
एक जमात के लोगों के लिए
सीमा-रेखा खींचने के लिए
लोग देश-भक्ति का पाखण्ड करते हैं।
मानव हत्या कर सम्मान के द्योतक बनते हैं।
पता नहीं है मगर इन बेचारों को कि अपने अस्तित्व के
खण्डित आकारों में
अपनी ही दुनिया के विकृत रूपों में
अपने ही घरों के जर्जर हालातों में
ये खुद ताण्डव नृत्य करते
ठहाके मार रहे हैं -
अपने सम्पूर्ण विनाश में ही

अपने अस्तित्व के खण्ड खण्ड में ही
विघटित होते लोग
अन्दर ही अन्दर खोखले होते लोग
कैसे जिन्दा हैं?
आदमी आदमी के पतन का
कारण बन कर
क्यों ऐसी जिन्दगियाँ जी रहा है?
आज का नया दिन
नए साल के नए दिन में आज
नई यादों और नव-उपलब्धियों का
नया इतिहास, नई कहानी और नई दुनिया का
सपना हृदय में संजोए
दिन भर कमरे में अकेले
हँसते, खुश होते अपनी भावनाओं से
गप्पें मारते, चुहलबाजी करते
सम्बन्ध और सम्बन्धहीनता की स्थिति को
कल्पनाओं के तराजू में तौलते
यह साल कैसे बीत गया है।
बिना किसी सन्तुष्टि के
भय और त्रास के बोझ दबा
उद्विग्न मन था कि कहीं
आने वाला साल भी ऐसे ही न बीत जाए!
नाहक खर्च हो गए मेरे
अमूल्य पल
इतने वर्ष मैंने और लोगों ने
व्यर्थ में ही गवाँ दिए
कोई उपलब्धि अपने नाम की न होकर
मानव इतिहास में कोई ठोस
पृष्ठ न जोड़ कर

कैसे बीत गए इतने साल।
ये बीते साल
पलट कर देखता हूँ
मानव द्वारा भोगे गए ये इतिहास के पृष्ठ
ऐसी गलतियों से भरे हैं
जिनका संशोधन नहीं हो सकता।
वर्ण-भेद के श्राप से ग्रसित है
मानव का इतिहास
यातना, वेदना, अन्याय
अत्याचार, भूख, रोग और शोक के
भयावह रक्त-आँसूओं का समुद्र है
निरन्तर छटपटाते
भूख से, रोग से, शोक से
या अन्याय और अत्याचार से
युद्ध की विभीषिका से
धर्म और वर्ण की राजनीति से
वर्ग भेद की राजनीति से
कुप्रथा, कुरीति और अन्धविश्वास से
कितनी नारियाँ सती बन
कितने पुरुष बली चढ़ कर
मौत के शिकार हो गए।
इस तरह मानव द्वारा भोगे
इस तरह मानव द्वारा बिताए
अनेक साल
मानव के आँसू और खून से
लथपथ इतिहास हैं।
आदमी आदमी के बीच चोखा रिश्ता
स्थापित न हो सकने का इतिहास है।
इसलिए आने वाला साल

मानव इतिहास में नए पृष्ठ लिखने होंगे
प्रेम और रिश्तों की चोखी
स्याही से ये नये पृष्ठ लिखने होंगे।
बीते सालों में
आदमी के खून और आँसूओं से लिखे
इतिहास को चिंदी चिंदी बना कर
फेंक देना होगा।
इस सभी को
इन्सानियत के रिश्तों में समाहित होकर
मानव के शाश्वत इतिहास की
शुरुआत करनी होगी।
इस नए साल में
नई उपलब्धि
प्रेम की, दया की, प्यार की, क्षमा की
समानता की हो सभी में।
वाध्यता, विवशता और रीति-रिवाजों के नाम पर
प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में
सम्बद्ध और असम्बद्ध अवस्था
बीते दिनों ने पैदा की है
जहाँ आदमी जेलों में
सड़ने का वाध्य है
यातना भुगतने को मजबूर हैं।

माँ के वियोग में

सुबह मुँह अंधेरे अचानक कहाँ चली गई होगी
कोई धोखे से ले गया क्या
या किसी मुसीबत में पड़ी थी क्या?
नींद खुली तो पाया
माँ का बिस्तर खाली था
क्यों कहाँ कैसे गुम हो गई हमारी माँ?

आँखे खोलते
मेरे विश्वास का आकाश
धराशायी हो चुका था
चारों ओर देखा मैंने
देवदार और साल के पेड़ स्तब्ध थे
चाँप और गुराँस के फूल अश्रुपूर्ण नेत्रों से
मेरी ओर टकटकी लगाए थे
टिस्टा और रंगीत नदियां बेहद मटमैली
तेज गति से बह रही थीं...।
पूर्ण सन्नाटा
और माँ की अनुपस्थिति!
माँ किसी बाढ़ की चपेट में आकर
टिस्टा से गंगा तो नहीं पहुँच गई?
इतिहास की मूर्छावस्था से जन्मीं
नाना प्रकार की शंकाएँ और उपशंकाएं
मुझे सवाल कर रही हैं -
माँ कहाँ चली गई?
मेरी आत्मा को
विगत और वर्तमान
पूछ रहे हैं
तुम्हारी माँ कहाँ है?
मुझे सवालों के चक्रव्यूह में पड़े देख कर
मेरा भविष्य अट्टहास कर रहा है।
फिर भी इस चक्रव्यूह से
अपनी मुक्ति के लिए
प्रार्थना और आराधना करने वाली आवाजें भी
मेरी छाती के अन्दर ही सीमित रह गई हैं।
मैं बोल नहीं सकता
मेरी आवाज समिट कर सिर्फ मेरी धड़कन में ही सीमित हो चुकी है

मुझे अहसास होता है
अपने होने के बोध से भी भयभीत सा हूँ
अपने अधिकार, माँ की ममता भी
सिर्फ स्मृतियों में ही बचे हैं
अनुभूतियाँ में सिर्फ वेदना बची है न जाने क्यों?
हम यहाँ अपने ही चेहरों से ठगे गए हैं
अपनी ही आवाजों से धोखा खाए हैं, यह सच है।
माँ कहाँ गई होंगी!
कहाँ, क्यों और कैसे गई होंगी?
हम तो यहाँ बिल्कुल अनाथ हो गए हैं
असुरक्षित हो गए है
बहुत आँसू बहाए हैं हमने
बहुत चिल्लाए हैं हम
प्रार्थनाएं की हैं, आराधानाएं की हैं हमने
चीत्कार और क्रन्दन की भाका में
खुद को व्यक्त किया है हमने
बिलौना किया है, पर सुना किसी ने नहीं।
आँखें होते हुए अन्धों
और कान होते हुए भी बहरों की इस बस्ती में
तुम किस संसार में पहुँच चुकी हो
महाआकाश के किस कोने में हो
किस लोक में हो
अथवा किस संसार में कैद हो?
माँ तुम्हें मैं इस सन्नाटे में ढूंढ रहा हूँ
अनलिखे इतिहास के पृष्ठों में
तुम्हें पढ़ रहा हूँ
कल जन्म लेने वाले बच्चों की चीत्कार में
तुम्हें ढूंढ रहा हूँ
किसान और मजदूरों के लुटे खून-पसीने में

और दिन भर भविष्य की भीख मांग कर
बेरोजगार युवकों के थके सपनों में
तुम्हें तलाश कर रहा हूँ।
क्योंकि आजकल हम लाचार हो चुके हैं
परायी माँ को अपनी माँ कहना पड़ता है हमें
माँ का सम्बोधन और
महानता को भी नहीं समझते
यहाँ तो
बेटे के बदले हमें निपट गँवार कहते हैं।
हम बेदह त्रस्त हो चुके हैं माँ।
हमारे घर में तो अपरिचित
और बहुत से डरावने लोग आकर बस चुके हैं
अड्डा जमा चुके हैं।
आजकल तो हमारा घर खचाखच भरा हुआ है
अपना घर भी क्या कहें इसे
यह तो पराया घर हो चुका है।
और, हम अपनी पूरी आवाज में
चिल्लाना चाहते हैं माँ - "हमारा घर कहाँ है?"
पर हमारी आवाज
सीने से बाहर निकलती ही नहीं
यह छाती मेरी अपनी है कि नहीं
यह जानने के लिए इसे छूता रहा हूँ
इस प्रकार विवशता और वाध्यता की सड़क पर
वक्त की थपेड़ों को सहते
घिसटता जा रहा हूँ वक्त के साथ
प्रत्येक पल खुद को पीछे की ओर धकेलते हुए।
तुम्हारे होते हुए हमारा घर
कैसा साफ-सुथरा और खुला था
यह अब वैसा नहीं रह गया है!

यह तो खचाखच, बदबूदार और मैला हो चुका है।
हमारी फुलबाड़ियाँ
गंदगी और कचड़े से भर चुकी हैं।
पहले की तरह बाबरी चितुचाङे फूलों की खुशबू नहीं
गली-सड़ी दुर्गन्ध
वातावरण में फैल चुकी है।
हम लोगों का तो यहाँ दम घुटने लगा है
हमारी अनाज की फसलें
धान, मक्का, कोदो, फापर और साग-सब्जियाँ भी
खत्म हो चुकी हैं
खेती-बाड़ी भी सूख चुकी है
हम ये सब देख रहे हैं पर बोल नहीं सकते।
क्योंकि हमारी आवाज अब हमारी अपनी
आवाज नहीं रही।
इसलिए सहना ही हमारा धर्म
जो मिल गया वही स्वीकार कर लेना हमारा अधिकार बन चुका है।
इसलिए लगता है -
परायी माँ हमारी कोई बात नहीं समझती
हमारे गुन्द्रुक, सिन्की और भकिमलों के अचार का स्वाद
लाङस्या, सोज्या और छांग को भी नहीं जानती
दशैं - तिहार, लोसोङ पर्वों के बारे में नहीं जानती
भाई-टीका और पाङ्ल्हाब सोल का अर्थ उसके पल्ले नहीं पड़ता।
यदि तुम वापस नहीं आई तो
हम भी एक दिन अपनी इन सभी विरासतों को
नई माँ की तरह
न समझने वाले हो जाएँगे।
सिर्फ हम ही नहीं
हमारी कंचनजंघा और टिस्टा नदियाँ भी
जार-जार रो उठेंगी

चापँ-गुराँस और देवदार भी
हिचकियाँ लेते रो पड़ेगे
गोम्पा और देवीस्थान के आँसू नहीं थमेंगे।
तुम्हारे जाने पर माँ
तुम्हें ढूँढ़ कर वापस लाने के लिए
बहुत से लोग अगुए बन उछले-कूदे
गोम्पा, मन्दिर और देवीस्थलों में कसम खाकर
हमारे विश्वासों को उन्होंने जीता
कंचनजंघा को साक्षी रख कर
घर-घर में घूमे तुम्हारे नाम की कसमें खाकर
तुम्हें हरण करके ले जाने वाले पापियों को
कहते रहे कि वे सजा देंगे।
और तुम्हारी माँ को वापस लाकर छोड़ेंगे।
हम आत्मविभोर हो गए
हमने उन्हें सिर-आँखों पर बिठाया
विश्वास दिलाया
और तुम्हारे सभी जेवर वे उठा कर ले गए।
पर न तो वे लोग वापस आए
न तो तुम ही!
वे तो तुम्हारे सभी जेवरात बेच कर खा गए।
रावण को जीत कर तुम्हें वापस लाने
और राम बनने का ढोंग रचने वाले
वे लोग ही आजकल
रावण से मिलकर एक छोटे से टापू में
'मिनी लंका' स्थापित कर चुके हैं
यह उन्हें 'बक्शीश' में मिली बताते हैं
हमारी माँ को लंका से वापस लाना तो दूर रहा
उन्होंने तो उसका तोल-मोल कर डाला है
ये लोग कोई और नहीं

विभीषण, जयचन्द और मीर जाफर निकले।
इस प्रकार माँ तुम्हारी ममता और प्यार में
हमें तुम्हारे नाम में
बहुत से बापों ने धोखा दिया
तुम्हारे नाम व्यापार की दूकान खोलकर
आजकल हमें भी दूकान पर
बिक्री के लिए रख दिया है।
हम तो बेजुबान कितनी बार बिक्री हो चुके हैं
अनजाने में ही कितने शाहूकार
हमारी खरीद-फरोख्त और तोल-मोल कर चुके हैं
हम तो 'लाल बाजार' (हाट बाजार) की
साग-सब्जियों की तरह
या तो 'डिस्टीलेरी' की शराब की तरह
'वाण्टेड वेयर हाउस' बन चुके हैं!
माँ, हम तो अब खुद को पहचानने के लायक भी नहीं रहे।
हमें पता चला है
तुम्हारी अनुपस्थिति में
हम तो पूरी तरह अनाथ हो चुके हैं।
पता नहीं क्यों?
आजकल हमें बहुत डर लगने लग गया है
आकाश में उड़ता हवाई जहाज
हमारे सिर पर कहीं कोई बम तो न गिरा दे
लोगों को देखते ही हमारे प्राण सूखने लगते हैं
कहीं हम इनकी ठगी के शिकार नहीं हो जाएँ।
इसलिए माँ
आजकल हम मूर्तियों की तरह चुपचाप अचल पड़े हैं
चिल्लाने वाले पेट भरने वाले और कुलबुलाने वाले
तो दूसरे ही बन चुके हैं
हम तो सिर्फ मूक दर्शक बन चुके हैं

तुम्हारे नाम की मूर्ति स्थापना करने वाले यहाँ बहुत हो चुके
हमारे देवी-देवता भी अब सचमुच पाषाणों में तब्दील हो चुके हैं
तुम्हारी अनुपस्थिति में हम इन्हें ही तो पूजते हैं
पर हम तो यहाँ तोर्मा बन चुके हैं
फगत - तोर्मा
वह भी भूत-प्रेतों को भगाने के लिए
चौराहे पर रखी मूर्ति की तरह।
इसलिए माँ
तुम कहाँ हो?
किस शून्यता और महाकाल में हो?
तुम जहाँ भी हो जल्दी वापस आओ
यहाँ आ जाओ
देवदार और सुनाखरी के पेड़ तुम्हारी प्रतीक्षा में हैं
टिस्टा और रंगीत तुम्हारी प्रतीक्षा में बह रही हैं
कंचनजंघा तुम्हारी प्रतीक्षा में अटल है।

इस तरह बहुत रातें बीत चुकीं
बीत चुकीं बहुत सी ऋतुएं, फूल खिल चुके
पक्षी अपनी बोली बोल चुके
सभी पेड़ों पर नई कोंपलें निकल चुकीं
पर माँ तुम वापस नहीं आई
क्यों नहीं आई माँ अभी तक?
बिछोड़ यदि मिलन होता है तो
रात बीत जाने पर सुबह होती है यदि
माँ क्या हमारा मिलन नहीं होगा?
क्या तुम कभी वापस नहीं आओगी?

तुम्हारी मेरी एक ही कथा-अलग व्यथा

बन्धु!

तुम्हारी माँ के वियोग में मैं उपस्थित नहीं हो सका

तुम्हारे भग्न आँसूओं की बाढ़ रोकने में सहयोग नहीं दे सका

तुम्हारी आवाज में आवाज नहीं मिला सका

तुम कितने छटपटाए होंगे!

तुम कितने रोए होंगे!!

पर मेरी आँखें देख नहीं पायीं

तुम्हारे क्रन्दन को

मेरे कान सुन नहीं पाए

पर यह मत सोचो

मैं यहाँ आराम और खुशियाँ मना रहा था।

मैं भी दरवाजा बंद करके

तुम्हारी माँ के वियोग में रोया था

तुम्हारी दुःख और दर्द में मैं भी

विक्षिप्त बन तड़पा था

तुम्हारे क्रन्दन और पुकारों को तुम्हारी आँखों से बहे आँसूओं को

सभी ने देखा, सुना और समझा होगा

पर तुम्हारे लिए बहे मेरे आँसूओं को

किसी ने नहीं देखा

क्रन्दन और चीत्कारों को किसी ने नहीं सुना

क्योंकि मैं खुद अपने साथ रो रहा था

क्योंकि मैं खुद अपने में लोप हो चुका था

क्योंकि मैं हार में जी रहा था

तिरस्कार में जी रहा था

असुरक्षा में जी रहा था

परायी कारागार में जी रहा था

बेगानेपन की जिन्दगी जी रहा था

खुद के विछोड़ में जी रहा था

तुम्हारी अपनी माताओं के वियोग में जी रहा था

इसलिए साथी
मेरे उपस्थित न होने पर भी
मैं तो तुम्हारे साथ ही था
संवेदना की औपचारिकता
व्यक्त न करने पर भी
मैंने तुम्हारी माँ के वियोग में
इन पापी नयनों से आँसू बहा दिए हैं।

मुर्गा और साँढ़

हम मुर्गों की तरह भिड़ते हैं
हम साँढ़ों की तरह भिड़ते हैं।
हमें भिड़ा कर आपस में
हमें लड़ा कर आपस में
हमें लड़ता हुआ देख कर खुशियाँ मनाने वाले
और हमारे पक्ष-विपक्ष में अपना समर्थन
तालियां पीट कर जताते हैं
चिल्लाते हैं, ऊँची आवाजों में
हमें उकसाते हैं।
भिड़ते और मरने
भिड़ने और मारने वाले सिर्फ साँढ़ ही होते हैं।
भिड़ने यदि कोई मुर्गा मर भी जाता है तो
भिड़ते यदि कोई साँढ़ जीत भी जाता है तो
सभी भिड़ते मर भी जाएं तो
दर्शक और उन साँढ़ों और मुर्गों के मालिकों
को कोई नोक्सान नहीं होता
हारा हुआ या मरा हुआ मुर्गा भी गोश्त ही है
जीतने वाला मुर्गा भी गोश्त ही है।
मालिक को कोई फर्क नहीं पड़ता।
ऐसे हमेशा ही

मुर्गे की लड़ाई और साँढ़ की लड़ाई के खेल
हमारे देश में होते रहते हैं।
निर्दोष और अनजान मुर्गे की टांग में
छुरी बाँध कर
आँखों में रंगीन चश्मा लगा दिया जाता है
इसलिए वह मुर्गा और साँढ़
अपनी ही तरह के मुर्गे और साँढ़ को भी
शत्रु देखने लग जाते हैं
और साँढ़-साँढ़ के बीच
मुर्गे-के बीच युद्ध शुरू होता है
और आपस में ऐसे युद्ध होता रहता है।
इसलिए इस युद्ध में
जख्मी होकर मुर्गे और साँढ़ मर रहे हैं।
मुर्गे और साँढ़ खत्म होते जा रहे हैं।
इसलिए आजकल-
इस देश में कब रात होती है
पता ही नहीं चलता
कब उजाला होता है
इसका संकेत भी नहीं होता
क्योंकि मुर्गो को आपस में भिड़ाकर
मालिक ने मार दिया है
क्योंकि -
मालिक ने मुर्गों की लड़ाई और साँढ़ों की लड़ाई का
ठेका ले लिया है
मुर्गों और साँढ़ों के भिड़ कर मर जाने पर भी
मालिक को कोई नुकसान नहीं होता।
इसीलिए आजकल मुर्गों को जगह पर
'साइरन' बजता है
रात के समाप्त होने का संकेत देने के लिए

और आजकल साइरन बजने के बाद
घर के दरवाजों और खिड़कियों को बंद करके
अपनी जीवन-सुरक्षा के लिए
लोग प्रार्थना करने लग जाते हैं और
घर से बाहर कहीं भी न निकलने का
संकल्प करते हैं।
क्योंकि रात में घर से बाहर
कर्फ्यू के नाम पर काल रात्रि बैठी होती है
मुर्गों और साँढ़ों की लड़ाई कराने वाला यमराज
देवता बन पर्दे के पीछे
छुप कर बैठा होता है
इसलिए रात अभी और लम्बी होगी
क्योंकि अब
मुर्गा नहीं बल्कि सिर्फ साइरन बजता है।

ऐंठा हुआ सवाल

मैं कौन हूँ? कहाँ हूँ?
क्या कर रहा हूँ? क्या कह रहा हूँ?
और मुझे क्या करना चाहिए?
- मेरे लिए, हमारे लिए
- अपने लिए, हमारे अस्तित्व के लिए
अपनी मर्यादा के लिए
मेरा नाम और काम क्या है?
मेरा इतिहास और अस्तित्व क्या है?
मुझे कुछ पता नहीं
मुझे कुछ नहीं हुआ है।
मैं इसी तरह युगों से
इस देश में ही नहीं
बहुत से देशों में और भेषों में जी रहा हूँ
- जिन्दा रहा हूँ।

जिन्दा रहा था!
मेरा जीना, साँस लेना
खाना, सोना और नमकहलाली की परिधि में
चुपचाप और शून्य बन जिन्दा रहना है।
मैं पहरेदार ठेकेदार का
मालिक का नौकर
और शाहूकार की सुरक्षा करने वाला
बहादुर से लेकर युद्ध-भूमि का वीर!
अनेक नामों और कामों में विभाजित मैं कौन हूँ?
इस देश का मुझे पता नहीं है।
क्योंकि इस देश का निर्माण करते
मैं फांसी पर चढ़ा था
और इस देश के लिए मैं यदि मरा था तो
आज भी जिन्दा लाश बना हूँ और
अपने बारे में मुझे कोई पता नहीं है।
क्योंकि मेरा नामकरण - संस्कार करने वाले
अनेक मालिक हैं मेरे।
मेरा नामकरण-संस्कार एक बार नहीं
बल्कि हजार बार होता रहा
मेरा नामकरण-संस्कार करने वाले मेरे माँ-बाप नहीं हैं
नहीं थे इसीलिए
दूसरों के माँ-बाप से ही
मेरा नामकरण-संस्कार होने की वजह से
मुझे अपना नाम पता नहीं है।
देश के अंदरूनी झगड़ों से लेकर
विश्व-युद्धों तक लड़े होने के कारण
अपनी छाती को दीवार की तरह खड़ा करके
हजारों गोलियाँ खाने से
इस छाती में कोई स्पन्दन नहीं है।

मेरी छाती तो पत्थर की तरह
सर्द और निर्जीव हो चुकी है।
हृदय के अन्दर किसी प्रकार की
व्यथा या वेदना भी नहीं है
अपने अस्तित्व और इतिहास की
कल्पना और सपना देखने वाली
इस छाती के अन्दर
जिन्दा और स्वतन्त्र दिल भी नहीं है।

मैं भविष्य में

युगों-युगों से
इस संसार में
हजारों ठोकरें खाते
अनेक झंझवातों से जूझते
समय नदी में बहते
आदमी का चोला लेकर
मानवता की नौका का मैं खेवट हूँ।
खेवट हूँ मैं
अनेक युगों से
मुझे और बहुत से युगों में बहना है।
वर्तमान में
महा-आकाश पर कदम रख कर
शून्यता को अपनी मुठ्ठी में कस कर
स्वतन्त्र सत्य के साथ बतियाते
भविष्य के रास्ते पर मैं चल रहा हूँ
और मेरे साथ भविष्य चल रहा है
मेरे 'मैं' के साथ खालिस सपने
चल रहे हैं -
भविष्य के अत्यन्त मनोरम संसार में

मैं भविष्य में चल रहा हूँ
भविष्य मेरे साथ चल रहा है।

टिस्टा अभी भी मटमैली है

वारिश नहीं हुई है, धूप खिली हुई है
सर्दियों के दिन हैं - आकाश में धूल उड़ रही है
चारों ओर सूखा पड़ा है
आकाश में गर्द छायी हुई है
इसलिए धरती पर फसलें नष्ट होती जा रही हैं।
किसान और मजदूर
बदकिस्मत जनता अकाल से जूझ रही है
अभाव और असुरक्षा सता रहे हैं
बादलों में एक बूंद पानी नहीं है
नद-नाले और झरने सूख चुके हैं
फिर भी पता नहीं क्यों
टिस्टा आज भी मटमैली बह रही है।
टिस्टा के मुहाने पर
या हो सकता है कहीं
अन्दर ही अन्दर जमीन धंस रही है
चट्टानें मिट्टी कीचड़ और फूलों के पौधे
यहाँ की उपजाऊ मिट्टी
देवदार के हरे पेड़
हिमालय का स्निग्ध और सौम्य सौंदर्य
इन पर्वत पहाड़ों के साथ
टिस्टा में बहते जा रहे हैं
और टिस्टा मटमैली होती जा रही है...
यहाँ के भञ्जाङ और देवराली में
कितने युगों ने सांस लिया
कितनी पीढ़ियां हमारे पुरखों की बीत गईं
पर टिस्टा अभी भी मटमैली बह रही है!

मेरे पुरखों के बलिदान
मेरे पुरखों की कामनाएं
आराधानाएं और अर्चनाएं
यहाँ के देवी देवताओं ने
हो सकता है सुनी न हों
जिनकी इसी मकसद के लिए उन्होंने
स्थापना की थी
अपरिचित होकर मेरे पुरखों की
आकांक्षाएं
आज भी टिस्टा का मटमैला पानी बन चुकी हैं
अपना चेहरा टिस्टा के पानी से
साफ-साफ देख न पाने से मैं छटपटाने लगा हूँ
हाँ मेरे पुरखों के सपने
इसी पानी में उलझे हैं
या किसी मगरमच्छ के मुहँ में पड़ गए हैं मैं नहीं जानता।
पर मैं यह कह सकता हूँ -
मेरे पुरखों के सपने
यही मटमैली टिस्टा बन बह रहे हैं
यही मटमैला स्वरूप ही
हमारे अस्तित्व का इतिहास है
हमारे दुर्भाग्य की कहानी है
टिस्टा का पानी निर्मल नहीं है
इस पानी को निर्मल बनाने की हेकड़ी दिखाते
बहुत से माझी आए और अपना-अपना किराया देकर
तथा टिस्टा को और ज्यादा
मटमैली बना कर चले गए
इसे गंदा नाला बना कर चले गए।
'फिल्टर' करके टिस्टा को
निर्मल बनाने का दु:साहस भी किया उन्होंने

पर टिस्टा आज भी मटमैली बह रही है...
अब इसी पानी में मछली और मगरमच्छ में
रात और दिन में फरक महसूस नहीं किया जा सकता
स्याह और सफेद में अन्तर आंका नहीं जा सकता
मछलियों का आकार और रंग कैसा है, बताया नहीं जा सकता।
आदमी मगरमच्छ को पहचान नहीं सकते
और मगरमच्छ मछलियों को
आसानी के साथ एक-एक करके खाते जा रहे हैं
कदाचित यह अहसास मछलियों को नहीं है।
ब्रह्मपुत्र के, कोशी के
और हिन्द महासागर के तमाम मगरमच्छ
टिस्टा नदी में आना शुरू कर चुके हैं आजकल।
क्योंकि पानी मटमैला है
और मगरमच्छों को अपना आहार ढूंढ़ने में आसानी होती है
मटमैले पानी की आड़ में
यहाँ मगरमच्छों का राज है
टिस्टा की भोली-भाली मछलियां
शनैःशनैः मगरमच्छों का आहार बनती जा रही हैं।
यदि यह सिलसिला जारी रहा
तो एक दिन सारी मछलियां समाप्त हो जाएंगी
और टिस्टा की मछलियों की कथा
एक दन्त्यकथा बन जाएगी!
मुझे डर लग रहा है
क्योंकि मगरमच्छ भयानक मुख और जबड़े लिए
इसी नदी में आ रहे हैं
और एक दिन टिस्टा नदी में
सिर्फ मगरमच्छों का ही डेरा होगा।
मछलियां अनजान है, बेफिक्र हैं
क्योंकि टिस्टा नदी मटमैली बह रही है...

आजकल आसमान की ओर देखता हूँ -
आसमान पर काले बादल छाए हुए हैं
बिजली चमकने लगी है, मैं सुन रहा हूँ
कहीं-कहीं बादलों की गड़गड़ाहट भी सुनाई देने लगी है
अब किसी क्षण अवश्य ही मूसलधार वर्षा होगी
और सूखे पड़े नद-नाले और झरने
ठाठें मारने लगेंगे, टीले पहाड़ियां भीग जाएँगे
फसलें लहलहाने लग जाएंगी
चाँप-गुराँस सहित अनगिन पेड़-पोधों में
नई कोंपले फूट पड़ेंगी, फूल खिल उठेंगे
चारों ओर हरियाली छा जाएगी
और इसी मनमोहक वन प्रान्तर में
परिन्दे झूम उठेंगे, गा उठेंगे, नाच उठेंगे
फूलों के रस पर झूम उठेंगे
साईली और बीरे
वन प्रान्तर को लोक गीतों से गुञ्जायमान कर देंगे।
पानी बरस कर
सभी नद-नालों और झरनों में बाढ़ आ जायेगी
और टिस्टा के मटमैले पानी को निर्मल, पारदर्शी
बना देगी
काई जम कर इकट्ठी हुई गंदगी को
जबरदस्ती घर जमा कर बैठे दूषित तत्वों को बहा ले जायेगी
इसी मटमैली नदी के पानी में अपना साम्राज्य
स्थापित कर बैठे मगरमच्छों को भी
विस्थापित कर देगी
और इस तरह युगों-युगों से मटमैला टिस्टा का पानी
पारदर्शी होकर बहने लगेगा
अफसोस है मगर
टिस्टा अभी भी मटमैली बह रही है...

आत्मस्वीकृति

सोलह जून के नौ बजे रात को
एक मित्र के निवासस्थान पर
उनके परिवार और सहयोगियों के साथ
बातचीत में मशगूल था
मानवता के पक्ष में बहस मुहाबिसा हो रहा था।
अचानक हमारे विचारों के संसार में
दो संदेशवाहकों ने
स्वतन्त्रता का घोषणा पत्र मेरे हाथों में थमा दिया!
सोने के पिंजरे से मुक्त होने की डाक ने
मुझे अत्यंत हल्का और प्रफुल्लित बना दिया
स्वतंत्रता के स्पर्श ने मुझे
मेरे शरीर के तन्तु-तन्तु में
खुशी भर दी
पिंजरे से मुक्त हुए पक्षी की तरह
मेरा स्वतन्त्र मन उड़ने लगा
मेरे ऊपर, बहुत ऊपर, और ऊपर
विचारों के आकाश में सूर्य को पकड़ने के लिये।
अब मुझे पिंजरे के उन तोता और मैना की तरह
सीताराम सीताराम कहने की जरूरत नहीं रही
किसी के आदेश से फैंके हुए दाने खाकर
बन्दी जीवन भोगने की मुझे जरूरत नहीं रही।
अब मैं सिर्फ मैं हूँ
पिंजरे से मुक्ति पाये पाखी की तरह
उन्मुक्ति के साथ उड़ सकता हूँ
वन-जंगल, पेड़ों की शाखाओं पर
बैठ सकता हूँ, विचरण कर सकता हूँ।
अपनी मनपसंद जगह पर
बसेरा बना सकता हूँ
पेड़ की शाखा पर घोंसला बना कर

अपने बच्चों का लालन-पालन और सुरक्षा कर सकता हूँ
अब अपनी भाषा और लय में बोल सकता हूँ
गा सकता हूँ नाच सकता हूँ।
इस पार, उस पार, नीचे-ऊपर, पहाड़ और तराई
जहां भी आ-जा सकता हूँ!
कोई सरहद या बाड़ नहीं रही अब
टिस्टा का पानी मटमैला है - ऐसा कहने की जुर्रत
कर सकता हूँ।
रंगीत का पानी उल्टी धार नहीं बह रहा
ऐसा बोल सकता हूँ
टेण्डोंग और मैनाम पहाड़ियों में जंगली आग लगी है
जंगल में आगजनी की सूचना
सभी को देने की मुझे अब आजादी है
काले को काला और सफेद को सफेद कह सकता हूँ
फूल और पाषाण में भेद कर सकता हूँ
मैं सच बोल सकता हूँ
क्योंकि सच के समान
मेरे लिये महान चीज इस संसार में और कोई नहीं है
गरीबों की सेवा के समान
मेरे लिये महान चीज इस संसार में और कोई नहीं है
गरीबों की और कोई पूजा नहीं है
मैं सारी दुनिया को अपना समझता हूँ
मेरी इच्छाएं, अभिलाषाएं और सपने भी
सिर्फ मानव के लिये हैं
उसकी मर्यादा और स्वतन्त्रता के लिये हैं
मेरी धारणा है मानव होना ही उसकी स्वतन्त्रता है
उसके सामने कोई छोटा या बड़ा नहीं है
घर के अन्दर या बाहर कोई दीवार खड़ी नहीं है
कोई भिक्षा देने वाला और लेने वाला भी नहीं है

मानव होना ही उसका सबसे बड़ा अधिकार है।
पर, पिंजरे की मैना को
स्वादिष्ट खाना मिल रहा है, ऐशो-आराम है
ऐसा कहने वाले मुगालते में हैं
यह संसार उनका ही है
जो आत्मसम्मान और स्वाभिमान की खरीद-फरोख्त करते हैं
बेचारी पिंजरे की मैना की जिन्दगी और
सीताराम सीताराम कहने की बाध्यता को
मनुष्य नामक प्राणी क्या समझे
उसकी इच्छा, आकांक्षा और मर्यादा का हनन करते
और आदमी को आदमी की ही बलि चढ़ाते देखकर
बुद्ध रो रहे होंगे
ईसा-मसीह मूर्छित हो गये होंगे
सृष्टिकर्ता स्वयं पश्चाताप कर रहा होगा
पर मानव नामक प्राणी
अपने ही भविष्य की चिता जला कर
अपनी जलती चिता की आग ताप कर
अपने भविष्य की कब्र में निश्चित सोया पड़ा है।

अपने ही बच्चों के गले में फांसी लगा कर
भविष्य को क्रूसीफाई कर रहा है
आजकल -
घरों और बस्तियों में
अपने समान लोगों से भयभीत होकर
आदमी इस संसार में
अपनी बोली बोलने से भी घबराते हैं
अपनी ही आवाज और भाषा में
जिन्दा रहना और खुशियां मनाना उनके लिये
डर की बातें हैं

आजकल इस बस्ती के जंगल भी समाप्त हो चुके
कितना तंगदिल और संकीर्ण हो चुका है
आदमी के मन का रास्ता!
कल तक मैं भी इस जंगल में
अन्धकार में भटक रहा था
और दमघोंटू वातावरण में जी रहा था
पर आज पाये इस मुक्ति के घोषणा पत्र से
अन्धेरे जंगल से
पाप और छलकपट के दलदल से
मैंने वैतरणी नदी पार कर ली है
अब मैं स्वतन्त्र हूँ, स्वच्छ हूँ -
विचार से, तन से, सिद्धांत से, नीति से
नैतिकता से मानवता से
और तुम्हारी मुक्ति के लिये अब मैं लड़ सकता हूँ!
अपनी जन्मभूमि के लिये अब मैं लड़ सकता हूँ!
अपनी जन्मभूमि के लिये अब मैं बेधड़क, निर्भीक हो
अपने प्राण उत्सर्ग कर सकता हूँ।

क्रूसीफाइड प्रश्न

तुम मेरे साथ हो जन्म जन्मान्तरों से
और तुम थे आदम और हब्बा के जन्म पर भी
सुम्निमा* और *पारूमा के जन्म पर भी
सृष्टि के शुरू में भी तुम मौजूद थे।
उस वक्त
तुम्हारे स्वरूप को सभी पहचानते थे
तुम्हारे रूप को सभी देखते थे
पर आज भी तुम उसी रूप और स्वरूप में हो
अनगिन सदियों पहले की तरह
आज भी यथावत हो।

पर तुम्हें आज हमने देखना छोड़ दिया है
तुम्हारे स्वरूप को पहचानना छोड़ दिया है।
आजकल आदमी सिर्फ आँखों से ही देखते हैं
आँखों से तुम्हारे रूप की
थाह मगर पा सकते नहीं
तुम्हारे रूप और स्वरूप की
थाह पाने के लिये आत्मा और हृदय की आँखें चाहियें।
आज जान ही नहीं पा सकता आदमी तुम्हारी महिमा
क्योंकि आदमी मन और विचार से परतंत्र है।
आदमी का अपना कह कर बुलाने वाला कोई नहीं है
उसके विचार और मन भी उसके अपने नहीं हैं
इसलिये तुम्हें पहचान नहीं सकता आदमी
और इस मानव संसार में
तुम्हारा होना या न होना कोई अर्थ नहीं रखता।
पर मैं कह सकता हूँ तुम सर्व-व्याप्त हो
मुझ में भी अवश्य विद्यमान हो
इसलिये मैं हूँ।
पर मैं तुम्हें पहचान नहीं सका हूँ
तुम्हें पाने में असमर्थ सिद्ध हुआ हूँ
इसलिए मैं हूँ भी और हकीकत में नहीं भी।
मैं कुछ हूँ, नहीं भी-मेरा अस्तित्व
आदमी के जन्म और मृत्यु के बीच की
एक दुखमय छोटी यात्रा से
आगे कुछ और नहीं है।

किरात परम्परा में आदम और हब्बा

लोगों की इस बस्ती में

आदमी को खुद से सवाल पूछना चाहिये
तुम कौन हो?

पर किस भाषा में?
आदमी मानवता की भाषा तो भूल चुका है
आदमी आदमी के बीच के सम्बन्ध को भुला चुका है।
मैं किस भाषा में पूछूँ? किस भाषा में बोलूँ?
मैं आदमी से कैसे, किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करूँ?
मैंने जो चाहा है, वह आदमी को पसंद नहीं है
मेरी भाषा को वह समझता ही नहीं
मैं चाहता हूँ मानवीय सम्बन्ध
मैं मानवता की भाषा बोलता हूँ।

तुम मानव होकर एक नारी की मर्यादा बचा नहीं सके
उसकी कोख को हमेशा के लिये बाँझ बना कर
तू अपनी माँ को भी बलात्कृत होने से बचा नहीं पाए हो।
धिक्कार है तुम्हें!
इतिहास तुम्हें कभी माफ नहीं करेगा।

तुमने जो बलात्कार किये हैं/हत्याएं की हैं/पाप किये हैं
अन्याय किए हैं/भविष्य की भ्रूण हत्याएं की हैं
उनका तू प्रायश्चित भी तो न कर पायेगा
क्योंकि यह जो इतिहास है अत्याचार का
वह कभी मिट नहीं सकता आदमी के मन से
तुम्हारे न रहने पर इतिहास मिटेगा नहीं।
तुम कहीं भी निर्वासित हो भाग नहीं सकते
लीबिया में जाओ या अमेरिका में
पर तुम्हारा पाप तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेगा
मानव की पवित्र आत्मा तुम्हें कभी माफ नहीं करेगी
तुम मर चुके हो हिटलर
अपनी ही आत्मा की हत्या कर
प्रायश्चित किया तुमने

तुम संसार छोड़कर चले गये हो मुसोलिनी
तुम दुम दबा कर भाग गये ईदी अमीन
पर क्या खुद से भाग पाओगे?
तुम पर आज थू-थू कर रहा है इतिहास
नफरत कर रहा है तुम पर सारा जमाना।

इस बस्ती में आजकल आदमी की आवाजें
काफी दिन हुए, सुनी नहीं गई?
न जाने क्या हो गया है
लोग आजकल बोलना छोड़ चुके हैं क्या?
इस बस्ती में कुत्तों के भौंकने की आवाजें
और भौं-भौं ही सुनाई देती हैं
शायद विचारों की बस्ती से लोग कहीं अन्यत्र चले गये हैं
शायद लोग कुत्तों की बोली बोलना शुरू कर दिये हैं।
पर इतनी बात पक्की है -
इस बस्ती में सिर्फ कुत्ते ही वाशिन्दे रह गये हैं
क्योंकि सिर्फ कुत्तों के भौंकने की ही आवाजें सुनाई देती हैं।
शायद भूख और सर्दी से
ये कुत्ते सुबह कुछ ज्यादा ही भौंकने लगते हैं
दिन भर चुप रहते हैं
पर तेज धूप हो तो फिर जोर जोर से भौंकने लग जाते हैं
हड्डी पर झगड़ते और भी ज्यादा भौंकने लग जाते हैं
हड्डी पर झगड़ते और भी ज्यादा भौंकने लग गये हैं आजकल
कहीं ये पागल तो नहीं हो गये?
कुत्ते पागल हो गये हैं
अब हमें बचना है इनसे
यह कहीं काट न खाएँ इसी भय से जिन्दा रहना है हमें
पागल कुत्तों से
या मालिक के कुत्तों से हमें सतर्क रहना है

क्योंकि कुत्ते आदमी और आदमी कुत्ते बनते जा रहे हैं।

लाल मुर्गे की बांग

एक लाल मुर्गे को लोमड़ी खा जाए
तो क्या रात कहेगी कि अब मुर्गा बांग नहीं देगा
और सुबह नहीं होगी
हमेशा अंधेरा रहेगा और उसी का साम्राज्य कायम होगा।
एक लाल मुर्गे को लोमड़ी खा जाए
तो क्या लाल मुर्गे खत्म हो जाते हैं?
एक लाल मुर्गे को लोमड़ी के उठा ले जाने पर
तो क्या बाकी मुर्गे बांग देना छोड़ देते हैं?
ये लाल मुर्गे तो
अंधेरी रातों के विरोध में उठीं
महाशक्ति की समवेत आवाजें हैं
अन्याय, अत्याचार और पार का नाश करने के लिए
एक सृजित शक्ति के प्रखर रूप हैं।
रात, तुम्हें खुशियाँ मनाने की कोई जरूरत नहीं
तुम तो प्रचण्ड अंधकार हो
देखा नहीं है तुमने अपना यह रूप कभी
क्योंकि अन्धेरे का प्रतिरूप नहीं होता
तुम तो काली रात हो
तुम्हारी किसी से तुलना नहीं हो सकती
तुम सिर्फ अन्धकार हो, असत्य और पाप का स्वरूप हो
इसलिए एक नन्हें जुगनू से भी तुम
हमेशा परास्त हुई हो
एक माचिस की तीली ने भी तुम्हारे अस्तित्व
को नकारा है
तुम जिन्दा लाश हो, पाप के पुंज हो
इसलिये तुम्हारी ताण्डव-लीला का नाश करने के लिये

झूठ के साथ ठगे गये सच को
अन्याय के साथ दबे न्याय को
दानव से हार खाए मानव को
सोये हुए मानव मन को, सोए हुए मानव विचार को
हनन हुए मानव अधिकार को
तड़फती हुई मानवता को
झझकोरने के लिये
एक नहीं,
अब इस धरती पर
लाखों करोड़ों मुर्गे बांग देंगे
लाल मुर्गे बांग देंगे
लाल मुर्गे बांगें देते रहेंगे।

वीर्यदान

हमारी माताओं का बलात्कार करने वाले
हमारी बहू बेटियों की इज्जत लूटने वाले
हमारे पिताओं और बड़े भाईयों की हत्या करने वाले
पापी हिटलर और ईदी अमीन
चाउसेस्की और मार्कोस
आज भी हमारे संसार में
बलात्कार कर रहे हैं हमारी माताओं का
हत्या कर रहे हैं हमारे पिताओं की
दुनिया के इस छोर से उस छोर तक
पूर्व से पश्चिम तक
सभी जगहों और बस्तियों में।
आज भी ये किसी न किसी भेष में
किसी न किसी रूप में
मानव भाग्य और अधिकारों को लूट कर
धन दौलत और पूंजी की ताकत से

अपनी व्यवस्था कायम किये हुए हैं
अपने शासन और आसन पर विराजमान हैं
आदमी के रूप में ये हैवान ये यमराज
आदमी को चारों ओर भयभीत किये हैं।
इसलिये
इस नर्क-कुण्ड रूपी संसार में आजकल
हरेक घर में
ईसा मसीह क्रूसीफाई हुआ है
बुद्ध असहाय बन रोया है
अब्राहम लिंकन गोली खाकर
लहूलुहान होकर मरा है
नेल्सन मण्डेला कारागार में चिन्तामग्न बैठा है
इस दुनिया में आजकल
आदमी इन्सान की भाषा नहीं बोलता
इसीलिये हो सकता है
आदमी इन्सान की भाषा नहीं बोलता
इसीलिये हो सकता है
आदमी इन्सान की भाषा नहीं समझता।
मानवता, बुद्धि और विवेक तो
आदमी अपने स्वार्थ के लिये भुना चुका है
मानवता, सत्य और धर्म नामक बातें तो
इस दुनिया में खोटे सिक्के बन चुके हैं।
संसार वाद-विवाद के चक्रव्यूह में फंसा हुआ है
इस चक्रव्यूह के अन्दर
फिरकापरस्ती, जुल्म, शोषण, खुदगर्जी, झूठ और खुशामदी के
आग्नेय अस्त्रों का विस्फोट हुआ है
नशीले पदार्थों का धुँआ चारों ओर व्याप्त है
चारों ओर अन्धेरा फैला है
आदमी एक दूसरे के मन के संसार

में झांक कर देखने में असमर्थ हो चुका है
एक दूसरे को आदमी के रूप में पहचानने में
असफल हो चुका है।
बहुत ज्यादा अस्पष्ट और अंधेरे हो चुके
आदमी के मन और विचार
आदमी की इच्छाएं, आकांक्षाएं और नैतिकताएं।
इस संसार में आदमी
अति दुर्बल और कमजोर हो चुका है
अति सस्ता और आश्रित हो चुका है
आदमी होकर भी इन्सानियत की सतह पर खड़े होकर
जिन्दा रह सकने में असमर्थ हो चुका है
आदमी अपने हक और मर्यादा तक को
समझने में असमर्थ हो चुका है
क्योंकि आदमी भूल चुका है
उसकी तरह और भी आदमी हैं जिनकी आकांक्षाएं
और सपने उसके सपनों और आकांक्षाओं जैसे हैं
इसी वजह से वह विचारों की परिधि में सिकुड़ कर अपने में ही
सीमित होकर रह चुका है।
हैरानी होती है -
बीते कल के नशे में
आज जिन्दा है आदमी क्षणिक ऐन्द्रिक सुख के लिये
इसी वजह से -
पैसे की ताकत से यौवन के खेल में स्खलित
वेश्या के कोठे पर जाता है, मर्द बनने का
ढोंग करता है
और पानी की तरह वीर्यपात करता है
ऐसे वीर्यो से
गर्भाधान हुए बेटों से
मैं क्या करूँ कल की आशा?

वेश्यावृत्ति कर किंवा
वासना के उन्माद को रोक न सकने वाली
अनुशासनहीन, संयमहीन, चरित्रहीन
नारियों से भी
स्वस्थ और निरोगी
युगपुरुषों का जन्म कैसे होगा?
ऐसे पुरुषों के वीर्य से
हमारे भविष्य का नाश हो चुका है
हमारे वर्तमान के गर्भ में
हमारे भविष्य का नाश हो चुका है
हमारे वर्तमान के गर्भ में
हमारे भविष्य की बल्कि भ्रूण हत्या हो चुकी है!
इसलिये प्रिये!
हमें तो अभी इस संसार के लिये
इस संसार के मानव मात्र के लिये
हमारे लुहावने भविष्य के लिये
एक युगपुरुष को जन्म देना है।
ऐसे नामर्दों से तो बेहतर है कि
हम अटलासकी राक्षस जैसा बेटा
पैदा करें
जो पृथ्वी को शरीर पर लाद कर
चल सकने वाला हो -
पृथ्वी को अपने वश में कर सकने वाला हो
अपनी ही तरह के लोगों से दब कर
मोहताज होकर
भिखारी तो नहीं बनेगा
अपनी शक्ति और बलबूते से जो
जिन्दा रह सके
और अपने नाम से जिन्दा रह सके।

इसलिये हमें अपना बेटा
महाआकाश के विस्तार में पैदा करना है
जो इस पृथ्वी पर स्वर्ग की स्थापना कर सके
अमन चैन से मनमोहक बस्तियों का
निर्माण कर सके
इस धरती की कोमल कोख में
हमारा बेटा
नये संसार की सृजना कर सके
विचार और आचार के
धर्म और कर्म के
समानता और भाईचारे के संसार की।
ऐसे महापुरुष को जन्म देना है हमें
इस नये युग में
नई पीढ़ी को पैदा करने के लिये
प्रिय सहर्ष स्वीकार करो
मुझे वीर्यदान के लिये।

कल का प्रसंग

काफी युगों के बाद
मैं इस दुनिया में विक्षिप्त हो जाऊँगा
जो देख न सकता हो
जो सुन न सकता हो
जो हँस न सकता हो
वैसे एक शून्य में मैं तब्दील हो जाऊँगा
मेरी हस्ती मिट्टी में मिल चुकी होगी।
तब
इस धरती की सम्पूर्णता में
अत्यन्त मनोरम स्थिति व्याप्त होगी
ढल जाएंगी तेरे, मेरे और फलाने के

बीच उठी दीवारें
सिर्फ इन्साँ ही इस साँझे संसार में
अमन और चैन के साथ जिन्दगी बसर करेगा
आज की तरह उस दिन
इन्साँ इन्साँ के दरम्यान नहीं खिचेंगी
युद्ध की तलवारें
मरना नहीं पड़ेगा पेट की आग बुझाने को
और जिन्दा रहने के लिये किसी के
रहमो-करम का मोहताज नहीं होना पड़ेगा
रिश्वतखोरी की घुन खाया
मुल्क नहीं होगा
जातिवाद, भाई-भतीजावाद
और श्मशानघाट पहुँच चुकी व्यवस्था का
वजूद नहीं होगा
सम्पूर्ण क्रान्ति का सूरज उगेगा
उस साँझे संसार में
चोखा जीवन जीने वाले
लोग होगें, साबूत और खालिस।

मानव हृदय को होठों से छूते हुए

खुली आँखों से आदमी
कितना सुन्दर दिखता है
मैं सोचता था हमेशा
सभी आदमी सुन्दर होते हैं
मेरी आँखें देख रही हैं इस सुन्दरता को
पर मन की आँखों से
खुली आँखों से सुन्दर दिखने वाला आदमी
उतना सुन्दर नहीं दिखता।
जब मैं हृदय के होठों से

आदमी को छूकर देखता हूँ
आँखों से पहचाना
आदमी देखने लायक नहीं है
आदमी तो कुछ और ही है
आदमी की शिनाख्त करना तो बहुत मुश्किल है।
क्योंकि
सिर्फ रंग, आकार, चेहरा आदमी नहीं होता
बोलने, हंसने, गुस्साने वाला
लोभ, मोह, पाप और ईर्ष्या करने वाला
प्राणी ही सिर्फ आदमी नहीं होता
तब आदमी कौन है?
क्या है?
आदमी तो उसके अन्दर कहीं छुप कर बैठा
अदृश्य रूप है
जिसकी शिनाख्त कर पाना मुश्किल है।

मन की संधि-रेखा

शुरू से आज तक
आदम और हब्बा से आज के इन्सान तक
लोगों ने अपनी ख्वाहिश से
मुल्कों का निर्माण किया है
खींची हैं सरहदें अनेक मुल्कों की
मलियामेट किया है मुल्कों को
मिटा दी हैं मुल्कों की सरहदें भी
इसी अकेली धरती पर
देश को विदेश और विदेश को देश में तब्दील किया है
और यह क्रम निरन्तर जारी है
सरहदें खींचने और मिटाने का क्रम
देश और विदेश की स्थापना

और विस्थापन के नाम पर
मानव सुरक्षा और हिफाजत के नाम पर
हत्या और बलिदान करते
अभिमान और स्वाभिमान का मुद्‌दा बना कर
खालिस मानव अस्तित्व को विवादास्पद बना कर
समूचे स्वरूप पर प्रश्न चिन्ह लगा कर
जाति, धर्म और वर्ण में विभाजित आदमी
फिरकापरस्ती की
एक प्रहेलिका है।
इसलिये खण्डित और विभाजित है आदमी।
आदमी : खुद में खोया है, विक्षिप्त है
एक दूसरे पर शंकाएं और उपशंकाएं करता है
आदमी : एक दूसरे से त्रस्त और भयभीत है।
अविश्वास की खाई के आर-पार खड़ा है आदमी।
आदमी आदमी के बीच रिश्तों की
वह गरमाहट नहीं रही
क्योंकि आदमी खुदगर्जी का
राग अलापने में व्यस्त है।
किसी को किसी की परवाह नहीं है
किसी को किसी की रत्ती भर वास्ता नहीं है।
खुदगर्जी के राग में मस्त आदमी को
अब किसी की जरूरत भी नहीं रही।
अपनी खुदगर्जी की सरहदों में
अपने ही हित के साम्राज्य में
प्रत्येक व्यक्ति अपने सिंहासन पर
विराजमान स्वयम्भू है।
पाँच अरब लोगों की वेदना और व्यथा
की कथा है यह।
इसी कारण

इस संसार में आदमी
आज वास्तव में निपट अकेला है
अकेलेपन से जूझ रहा है
पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण
जिधर भी देखो
आज आदमी निपट अकेला और मायूस है।
क्योंकि -
आदमी, आदमी की भाषा नहीं समझता
आदमी आदमी की व्यथा को महसूस नहीं करता।
रिश्तों से खाली लोग
प्यार-मोहब्बत से खाली लोग, अपरिचित लोग
कितने जड़ और निर्दयी बन सकते हैं
अपने साम्राज्य में
आदमी आदमी का कत्ल करके
खुद जिन्दा रहने का संविधान रच सकता है।
दूसरों को नीचा दिखा कर
खुद ऊँचा बन सकता है
दूसरों पर अत्याचार अन्याय, दमन और शोषण करके
सिर्फ खुद जिन्दा रहने का जुगाड़ कर सकता है।
आदमी और मुर्कों के बीच आदमी
इस तरह द्वन्द्व और युद्धरत है संहारक प्रवृत्ति के लिये
बम, बारूद और मिसाइलों के साथ
खिलवाड़ कर रहा है
वीभत्स अस्क्ष-शस्त्र उठाकर
विश्व में त्राहि-त्राहि मचाये हुए है।
पाँच अरब की आबादी में
वर्तमान और भविष्य को
भाग्य और अधिकार को
खुद जिन्दा रहने की खुदगर्जी में

आदमी ने आदमी को जुए के दाँव पर लगाया है।
आज की तारीख तक
अनेक युद्ध जी कर भी
आदमी खुद से परास्त है, पराजित है
खुद अपने और समग्र मानव का मन जीत न पाने पर
आदमी घुट घुट कर रोया भी है
अनेक युद्ध जीतने पर भी।
अफसोस है
आदमी, आदमी के खालिस मन को जीत नहीं
सका है।
मुल्कों के बीच सरहदें खींच कर
और मिटा कर भी।
अफसोस है
आदमी, आदमी के दरम्यान खिंची
संधि-रेखा को मिटा नहीं सका
आदमी एक नहीं हो सका।

दूरी तुम्हारी और मेरी

कोई भी दूर नहीं है
इस पृथ्वी पर सभी सम्पूरक हैं।
आकाश और बादल, वाष्प, जल-थल
और एक ही पृथ्वीवासी मनुष्य
वास्तव में कितने नजदीक हैं!
प्रकृति ने मनुष्य को
एक ही साँचे में ढालकर निर्माण किया है
जीवन और मृत्यु नियमबद्ध!
मनुष्य का रिश्ता है कितना आबद्ध!
फिर भी पता नहीं क्यों -
आदमी-आदमी के बीच इतनी दूरी क्यों है!

आदमी आदमी को जानते हुए भी
नहीं पहचानता आजकल
पहचान कर भी नहीं पहचानता
समझ कर भी अनजान होने का ढोंग करता है
आदमी आदमी को अपना नहीं ठानता।
इसीलिए-
इस संसार में तुम और मैं
इन्सान हैं तो क्या हुआ?
मैंने तुम्हें देखा है
तुम्हारे रूप और रंग को पहचाना है
पर तुम्हें नहीं पहचान पाया हूँ
तुम्हारे दर्द और वेदना को
मैं जान नहीं पाया हूँ
तुम मुझसे शंका करते हो
क्योंकि -
तुम्हारे और मेरे बीच में
एक सरहद खड़ी है
सरहद हमनें खुद ही खड़ी की है।
हमारे विचारों में, हमारे दिलों में
शंका के पहाड़ बर्लिन की दीवार की
तरह खड़े हैं!
हमारे आदमी होने से क्या हो जाता है!
हमारी शक्लें समान होने से क्या हो जाता है!
आदमी की वेदनाएं, व्यथाएं
भोगना और जीना
असमीप हैं - एक दूसरे से
एक दूसरे पर हॉबी है मनुष्य
शासन करने के लिये!
मनुष्य के शाश्वत रिश्ते को

मनुष्य ने अपने स्वार्थ में बदल दिया है।
इस तरह
अपनी खुदगर्जी के सिंहासन पर
लोग निपट अकेले जी रहे हैं-
एक ही विश्व के लोग
एक ही देश के लोग
एक ही घर के लोग
एक ही खून के लोग!

मैं जी रहा हूँ

आज के युग के कठिन मार्ग पर
चल रहा है यह समय।
युग की सड़क पर।
समय
इतिहास को
अपनी बगल में लिये
चल रहा है निरन्तर।
आज भी आदमी के हृदय में
इतिहास के घाव रिसते हैं
आज भी आदमी की छाती में
इतिहास के भूकम्प आते हैं
और आज आदमी
इतिहास के दिये रोगों से
पीड़ित रोगी जिन्दगियां बिता रहे हैं।
इतिहास लिखा जाता है पर मिटता नहीं-
आज के आदमी की बस्ती में
चन्द्रमा के काले दाग की तरह
इतिहास पर काले दाग पड़े हैं
और आदमी की छातियां पीड़ा से दुख रही हैं

दिवास्वप्न में ही सपने देखकर
आजकल के लोगों को ऐंठन जकड़ लेती है!
इसी कारण दिन भी
आदमी की पीड़ा से छटपटाता है
रात भी आदमी की वेदना से तड़फती है
आदमी के धरती और आकाश भी
निराश और उजाड़ होते हैं,
क्योंकि आदमी, आदमी के बीच का विश्वास
आदमी के द्वारा ही मरा है
और मानवता के जख्मी होने पर
अकेले रोया है।
यह देख कर
मानवता बोलने की कोशिश करती है -
पर वह युग की पीड़ा से अशक्त है
मानवता हँसना चाहती है
पर समय की वेदना की वजह से
निराश है।
मैं आज बीते इतिहास की सत्यता को बाँध रहा हूँ
मैं महाभारत के संजय की तरह
मूक दर्शक बना इतिहास को भोग रहा हूँ!
पर मैं जिन्दा कैसे रहूँ?
संजय की तरह
मैं संजय नहीं हूँ
धर्मयुद्ध महाभारत का,
मैं तो योद्धा हूँ-युद्ध का
आदमी हूँ कर्म का
मानव हूँ धर्म का
इसी धरती को स्वर्ग
और स्वर्ग को धरती

बनाने वाला
सृष्टिकर्ता मैं खुद ही हूँ!
मैं किसी के भरोसे में और
आशीर्वाद में जिन्दा रहने वाला
वह आदमी नहीं हूँ
किसी ऋषि-मुनि के श्राप से
पत्थर बन जाने वाला कोई देवता भी नहीं हूँ
मैं तो इन्सान हूँ
सृजनकर्ता आज के संसार का।
इसीलिये मैं कैसे विश्वास करूँ?
लंका में जाकर राम की फौज के द्वारा
असहाय नारियों के नाक-कान काटने
और बलात्कार करने वाले युद्ध को
धर्मयुद्ध कह कर,
कर्ण को धोखे में रख कर
हत्या करने वाले अर्जुन को
मैं कैसे वीर कह कर विश्वास करूँ?
अपने ही शिष्य के अंगूठे को,
गुरु दक्षिणा के रूप में मांगने वाले
धनुर्धारी को कैसे गुरु मानकर
उसकी पूजा करूँ?
और आज भी अंध-भक्त बनकर
मैं कैसे जिन्दा रहूँ?
इसीलिए आज मैं इतिहास के पन्ने में
बलात्कृत नारी बन कर जी रहा हूँ
धोखे में मृत कर्ण बनकर
मैं जी रहा हूँ
एकलव्य की जिन्दगी जी रहा हूँ!
मेरे जीने में इतिहास का अट्टहास है

क्योंकि मैं कल के इतिहास का
नया संस्करण बाँच रहा हूँ
मैं कल के मानव की नई शक्ल
बाँच रहा हूँ।
आज के इतिहास में मैं
आज के विश्व में मैं
संगीत का ताल बन कर जी रहा हूँ
इदी अमीन के ताण्डव नृत्य की
करुण चीत्कारें बन कर जी रहू हूँ
हिटलर की काल कोठरी के अंदर
भूख, रोग और शोक बनकर जी रहू हूँ
इथियोपिया और रोमनिया की जनता के
आँसू और क्रन्दन बन जी रहा हूँ-
सती बन मृत और
बलात्कृत हुई नारियों की
वेदना, व्यथा, अभाव और सुरक्षा
बाँच रहा हूँ
युद्ध में हुए शहीदों के
बच्चों और विधवाओं की
मैं मृत्यु भोग कर जी रहा हूँ-
क्रूस पर लटका कर मारा गया ईसा मसीह बन जी रहा हूँ
और मैं जिन्दा होकर भी
मुझे शंका है
अपने जीने में
मुझे खुद विश्वास नहीं होता -
मेरे होने में!
इसीलिये -
आजकल मुझे क्या हुआ है
मुझे कहने की इच्छा होने पर भी

मुझे डर लगता है आदमी से
आदमी को देख कर भी
आदमी है या नहीं -
मुझे शंका होने लगती है!
मेरे अन्दर एक छटपटाहट बची है
इस छटपटाहट को
मैं जिन्दगी कैसे मान लूँ!
मैं जिन्दगी के तंग रास्ते से होकर
समय की नदी में बह रहा हूँ
क्या मैं इसी बहने को
अपनी गति मान लूँ!
क्या मैं इसी युग और समय को
अपना इतिहास ठान लूँ?

घोड़ा बोलता नहीं

गन्दे और तंग अस्तबल में
लम्बे समय से
बूढ़ा घोड़ा बंधा पड़ा है।
यह घोड़ा कल तक जवान था
पर आज यह घोड़ा काफी बूढ़ा हो चुका है।
फिर भी इतने समय से
इस घोड़े का अस्तबल बदला नहीं गया है
कल से और ज्यादा
यह अस्तबल पुराना और टूटता जा रहै है।
आज अस्तबल से ही चाँद-तारे
और सूर्य को देखा जा सकता है
बारिश का पानी पूरा
घोड़े के जिस्म पर गिरता है
धूप की ऊष्णता पूरी की पूरी

घोड़े के जिस्म पर पड़ती है
इसके अलावा अस्तबल के नीचे
लीद इकट्ठी हो चुकी है।
अस्तबल के अंदर भी उतनी ही लीद भरी पड़ी है
आजकल पहले की तरह इस घोड़े को
दाना-पानी और घास नहीं मिलता
इसलिये यह बेचारा घोड़ा
बहुत कमजोर भी होता जा रहै है
क्योंकि घोड़े का दाना और घास को
घोड़े के अस्तबल में काम करने वाले
गोठाले और सईस ने खाना शुरू कर दिया है
आज घोड़े को भूखे पेट ही रहना पड़ता है।
यस सिलसिला काफी समय से जारी है
यह सब क्या हो रहा है -
क्योंकि घोड़े को पता नहीं है
घोड़ा बोल नहीं सकता!

उसके सईस और गोठाले
बहुत आलसी और बदमाश हैं।
घोड़े ने
बहुत से सईस और गोठाले देखे हैं।
पर ऐसे सईस और गोठाले
उसने पहले कभी नहीं देखे।
उसकी घोड़ी से
बलात्कार करने की कोशिश की जब गोठाले ने तो
घोड़ी के दुलत्ती मारने पर
गोठाले और सईस ने मिलकर कहा कि घोड़ी पगला गई थी
इसलिए उसे गोली से मार दिया गया है
अपनी घोड़ी पर होते अन्याय

और हत्या को
घोड़ा सिर्फ देखता रहा
पर प्रतिवाद नहीं कर सका
क्योंकि घोड़ा बोल नहीं सकता!

आतिशबाजी हो रही है
झलमल सारा शहर सजा है
आकाश से फूल बरस रहे हैं
देश की राजधानी में,
तोपों की सलामियाँ दी जा रही हैं
राष्ट्रीय धुन गूँज रही है
चारों ओर रौनक है : घोड़ा त्रस्त हो गया है!
बूढ़ा घोड़ा सुन रहा है
यह आवाज क्यों आ रही है
और क्या हो रहा है
यह घोड़ा समझ नहीं पाता
कि आज देश का स्वतन्त्रता दिवस है
या कोई बड़ा पर्व है।
फिर भी पता नहीं है
देश स्वतन्त्र होने पर भी
घोड़ा स्वतंत्र नहीं हुआ है
उसके लिये कोई फर्क नहीं पड़ा है
कल की तरह आज भी
उसे तो अपने मालिक को
अपनी पीठ पर लाद कर
चलना पड़ता है
जीन-लगाम और करेली काठी में
बंधना ही पड़ता है
पहले की तरह आज भी

उसे उसी पुराने अस्तबल में ही रहना पड़ता है।
वही दाने, वही सूखी पराल भी तो
पेट भर नहीं मिलती
क्योंकि ये दाने और पराल तो
आजकल सईस खाने लग गया है
और घोड़े को कल से
आज भूखे ही रहना पड़ा।
कल भी वह मालिक को सवारी करवाता था
आज भी
देश स्वतंत्र होकर भी
सरकारें बदलने पर भी
मालिक घोड़े को तो अपनी पीठ पर
लादने से रहा
मालिक घोड़ा और घोड़ा मालिक होने से रहा
क्योंकि ये दो किस्में
कल जहां थीं
आज भी वहीं पर हैं।
कोई परिवर्तन नहीं हुआ है
घोड़े को कोई फर्क नहीं पड़ा है
क्योंकि मालिक का वजन तो
बल्कि कल से
आज और ज्यादा बढ़ गया है।
क्योंकि घोड़े को सिर्फ मालिक ही नहीं
स्वतन्त्रता दिवस और दिवाली में
की गई आतिशबाजी के पटाखे भी ढोने पड़ते हैं
गगनचुम्बी महलों के निर्माण के बिल
और फाइवस्टार होटलों में
सुहागरात मनाने के
हिसाब का बोझ भी तो

इसी घोड़े को उठाना पड़ता है।
इतना बोझ ढोने पर भी
वह किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करता
क्योंकि घोड़ा बोल नहीं सकता।

घोड़े को सईस अस्तबल की ओर ले जा रहा है
घोड़ा पीछे-पीछे आ रहा है
जीनलगाम कसी हुई है
मुँह पर लगाम है
सामने रास्ता है
मालिक को पीठ पर लादकर जाने वाले
रास्ते पर ही यह घोड़ा हमेशा चला है
और बहुत से मालिकों को इसी प्रकर
अपनी पीठ पर लादकर
बूढ़ा घोड़ा इसी रास्ते से चला है।
आजकल घोड़ा पेट भर खाना और सुश्रुषा न पाकर
मालिक को अपनी पीठ पर लाद सकने में
अशक्त हो चुका है
बहुत कमजोर हो चुका है
फिर भी उसे मालिक को ढोना ही पड़ता है
उस पर मालिक पहले से काफी
भारी भरकम हो गया है
मालिक कैसे इतना ज्यादा मोटाया है
घोड़े को पता नहीं,
मालिक के मोटाने
और खुद भूखे रहने की बात घोड़े को
मालूम नहीं है।
उसके बहुत से मालिक हो चुके फिर पर भी
उसे कोई पता नहीं है।

आजकल तो सिर्फ मालिक ही नहीं
बल्कि गोठाला और सईस भी
मोटा गये हुए देखकर
घोड़े को भी हैरानी होनी चाहिये
उसके खाने वाले घास और दाने की ताकत देखकर
घोड़े को भी गर्व करना चाहिये
पर यह सब घोड़ा समझ नहीं सकता
कल और आज के इतिहास का उसे बोध नहीं है
'मैं घोड़ा हूँ' उसे इसका आभास नहीं है
'मैं चेतक भी बन सकता हूँ' ऐसी उसे कोई समझ नहीं।
फिर भी इस घोड़े ने अस्तबल में खुद रहकर
मालिक को अपनी पीठ पर लाद कर
महल में पहुँचाया है।
यस सच्ची बात इस बेचारे घोड़े को पता नहीं है
यह घोड़ा आज भी पुराने अस्तबल में है
सूखी पराल और दाने भी
सईस और गोठाले के खा जाने पर
आजकल तो बेचारे बूढ़े घोड़े के
सिर्फ प्राण ही बचे हैं।
फिर भी इस घोड़े ने कोई प्रतिवाद नहीं किया है
क्योंकि घोड़े में प्रतिवाद करने की चेतना नहीं होती
क्योंकि घोड़ा बोलता नहीं है
किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं जताता
क्योंकि वह बोल नहीं सकता।

इस संसार में मैं

काँटों भरी इस दुनिया में
जीने वाला आदमी मैं कौन हूँ?
लक्ष्य मेरा जग की सुरक्षा

ऐसा आदमी मैं कौन हूँ?

अकेले चलते ठोकर खाते, गिरते पड़ते
फिर उठ कर चलने वाला आदमी मैं
अन्धेरे के बीच में रस्ता बनाता
आगे बढ़ने वाला आदमी मैं।

अन्याय के विरोध में भिड़ जाने वाला
सत्य के लिये उत्सर्ग होने वाला मैं
मानव अधिकार का रक्षक ऐसा कहने वाला मैं
सभी मिल जुलकर हँसो कहने वाला मैं।

पापी के आगे काल बन भिड़ना चाहिये आदमी होकर
व्यर्थ में ही क्यों झुकाना सिर जीना है आदमी बन वीर।
जात मेरी मानव है जाति, धर्म, मानवता
आदमी सभी एक हैं चाहता हूँ मैं समानता।

ऊँच-नीच और भेद-भाव का
नियम यह मैं नहीं जानता
शोषण, दमन और अत्याचार
मैं तो मानता ही नहीं हूँ।

मानव - सुरक्षा कर्म है मेरा
मानव - सुरक्षा धर्म है मेरा
जान जाये तो जाये एक दिन तो जानी ही है
आत्मा है प्रिये, अमर मेरी।

हम भी इन्सान हैं

किसी की दया और रहम में जिन्दा रहने वाले हम

किसी की दी भिक्षा में खुश होने वाले हम
इन्सान होकर भी इन्सान से भयभीत हम
इन्सान होकर इन्सान का हक लूटने वाले
हम क्या इंसान हैं?
सर्वशक्तिमान -
इस संसार में इन्सान ही है
संसार का सृष्टिकर्ता
और कोई न होकर इन्सान ही है!
सृष्टि में जन्म से हम समान हक के
साँझे संसार में जन्म लेकर आये हैं
इन्सान का रूप-रंग और
इन्सान की जात लेकर आये हैं,
पर इसी संसार में
हम इन्सानों से ही पैदा हुए
हमारी तरह कुछ इन्सानों ने
हमारी तरह बहुत से इन्सानों को
इन्सान से हैवान बनाया है
हमारी ही अज्ञानता और कमजोरी का फायदा उठाकर
हमें ही ठगा है
हमारे ऊपर ये शासन और आसन
जमा कर बैठे हैं, पर
हम चुपचाप शोषित हैं!
हम चुपचाप शासित हैं!!

मोहब्बत

तुम्हारे रूप रंग और का वर्णन
मैं कैसे करूँ?
तुम कहाँ और किस रूप में हो
और कितनी व्यापक और विस्तृत हो

मैं देखकर बता नहीं सकता।
मैं लिख कर क्षेत्रफल नहीं बता सकता।
मैं छू कर नहीं बता सकता।
तुम क्या हो? तुम कहाँ हो?
मैं तो सिर्फ अनुभव कर सकता हूँ।
तुम कितनी शक्तिशाली और विशाल हो
उसका अनुमान
आज तक मैं नहीं लगा सका।
तुम्हारी कथा का
कोई सम्पूर्ण वर्णन कर ही नहीं सकता।
पर तुम तो प्रत्येक युग में
अनगिन रूपों में
सभी में व्याप्त थी
और आज भी तुम
सभी में व्याप्त हो
और इसी तरह बहुत-बहुत युगों के बाद भी
तुम तो और भी ज्यादा
हुस्न से सरोवार और जवान
बन सकी हो
इसलिए तुम्हें पाने की सभी कोशिश करते हैं
पर तुम किसी की बपौती नहीं बनी
तुम्हारे बिना कभी भी सृष्टि का अस्तित्व
संभव नहीं हो पाया है
पृथ्वी के चराचरों की बात ही छोड़ दें
भूखण्ड की सृष्टि भी तुम्हारे में ही निहित है।
तुम प्रेम बन
अनेक रूपों में आत्मसात हो
सभी में व्याप्त हो
पशु-प्राणियों में, शाश्वत माया के

रूप में व्याप्त हो
माँ और शिशु के बीच पवित्र ममता के
रूप में अमर हो।
बेटी और बाबुल के बीच स्नेह और
स्त्री और पुरुष के बीच मोहब्बत के रूप में
सर्वव्याप्त हो।
आदमी आदमी के बीच सद्भावना
प्रेम, मानवता के रूप
त्याग, बलिदान, दया और क्षमा के
रूप भी तुम्हारे ही हैं।
इसलिये
मोहब्बत तुमसे मेरी गुजारिश है-
तुम्हारे बिना सब अधूरा है।
तुम्हारे बिना विश्व ही अंधेरा है।
इसीलिये अधूरे और अपूर्ण आदमी के
पाषाण ह्रदय में
उस कठोर और निर्दयी मन में
तुम जाकर बैठ जाओ न!
अनेक टुकड़ों में विभाजित विश्व के
लोगों को
मानवता की डोरी से बांध दो न!
ताकि आदमी के ह्रदय-सागर से
सम्यक दृष्टि की गंगा बहती रहे।
मानवता की गंगा बहती रहे।
परोपकार और धर्म की गंगा बहती रहे।
माया और प्रेम की गंगा बहती रहे
सत्य और शान्ति की गंगा बहती रहे।
मोहब्बत तुमने
इस संसार को

अपने माया जाल में
इतने कस कर बांध रखा है
कोई भी तुमसे दूर नहीं जा सकता
तुमसे अलग नहीं रह सकता।
तुम किस रूप में कहाँ हो
कोई देख नहीं सकता
तुम्हारा रूप, रंग और आकार
कैसा और कितना है
कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता।
तुम सभी में व्याप्त हो और इसीलिए
तुम्हें सभी खोज रहे हैं
तुम्हारी प्राप्ति के लिए सभी प्यासे हैं
मोहब्बत।
तुम सचमुच कहाँ हो?

नहीं तो इतना सुन्दर संसार कविता की बपौती होता

पतझड़ से नंगे बन चुके
उस बूढ़े पेड़ की तरह
किसी दिन मैं
शिशिर ॠतु बन जाऊँ तो
कोहरे से ढके शरदकालीन आकाश की तरह
उदास और उजाड़
मेरे सपने वर्फ बन कर जम जाएं तो
तुम मत बोलना
मेरी कविता को कुछ भी मत कहना
किसी दिन खुद से
उलझ कर/भटक कर
मैं किसी विपरीत दिशा में बह जाऊँ तो

किसी क्रान्ति-देवी के हाथों में
मेरी कविता थमा कर बोलना
कि मैं तो हमेशा कविता में ही था।
और आज भी कविता में ही हूँ
पर इस धरती ने मुझे
आदमी के बंजर मन की भूमि में
विचार और नीति की खाद डालकर
क्रान्ति की खेती करने के लिए भेजा है।
अत्याचार की चोट से छटपटाए
गरीबों की चीत्कारों में मैंने
उनके अधिकारों के पक्ष में
एकता और सत्य की लय की तलाश की है
ताकि बेजुबाँ को जुबाँ मिल सके
अन्धों को आँखें
और वधिरों को कान
कविता से ही मैंने
क्रान्ति की भाका अपनाई है।

दुःस्वप्न की तरह बीते हैं ये दिन
खोखले शब्दों में समाप्त हमारे जीवन हुए हैं।

विगत जिन्दा रहे इसलिए
मैंने अपनी कविता को 'फ्रीज' कर दिया
अपने अनुभवों का खड़ा करके हिमालय
मैने तुम्हारे संसार की रचना की है
तुम्हारे संसार तक अपनी धुन पहुँचानी चाही मैंने
और सिर्फ तुम्हारी विजय का हर गीत गाया
पर आज कुछ समय के लिए
कविता से विदा लेकर मैं

अपने समय का युद्ध लड़ रहा हूँ
शांति और विकास के लिए
आदमी की मुकम्मल खुशी के लिए
गरिमा और शाश्वत सौंदर्य के लिए
मैं युद्धरत हूँ।
हार-जीत आती जाती रही
अपने-अपने मोर्चे के योद्धा आते जाते रहे।

युद्ध के इतिहास को मैंने
पीछे मुड़ कर देखा है
मन-मस्तिष्क की आँखें खोल कर निहारा है।
मेरे साथ अंतहीन साहस की कथा है
पर इच्छाओं की स्तुति का मैं गरीब हूँ।

भ्रष्टाचार और व्यभिचार फैले इस संसार में
क्रान्ति अनिवार्य होती है
नहीं तो इतना सुन्दर आदमी का संसार
कविता का बपौती होता।

पीछे मुड़ कर तो देख
पानी की बूंद बन समय की पोखर में
हमारा अधिकार लुप्त होता जा रहा है
इस पहाड़ी झरने का गीत भी
नदी में पहुँच कर स्वयं लोप होता रहा है।

आदमी की सम्पूर्णता की तलाश में मैं
आकाश की तरह खुला, धरती की तरह विस्तीर्ण
अपने गन्तव्य की ओर कदम बढ़ा रहा हूँ
शान्ति के अंतिम लक्ष्य के लिए

क्रान्ति का गीत गा रहा हूँ।

मैं तो कवि को दृष्टा और सर्जक मानता ही नहीं
यदि कविता जीवन की मध्याह्न में
साँझ की छाया को और प्रेम को नहीं देखती
पौ फटते ही जग कर, शान्ति की सुदूर साँझ में
आदमी का गीत नहीं गाती।
भ्रष्टाचार, अत्याचार और व्यभिचार की
चट्टान को चकनाचूर बनाने
अंधकार को खाक बनाने के लिए
कविता को बारूद और आग बनना होगा
ताकि हमारे बाद भी कविता
हमारे संघर्ष को जारी रख सके।